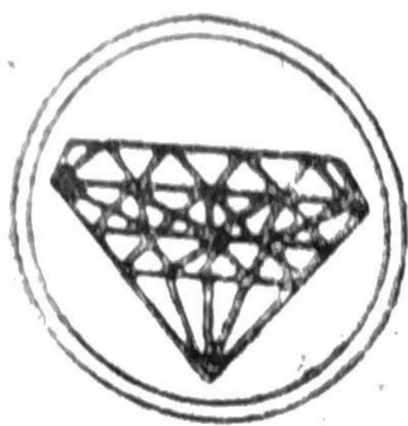


कुशवाहा कान्त

निर्मोही



D—1324

'कंचन…!' पुकारा मधुकर ने।

'कहिये…!' कंचन की आंखें आधी बन्द थीं, आधी खुली। यौवन भार संभालना शायद कोमल पलकों के लिए मुश्किल था।

'डर लग रहा है न!' मधुकर ने कहा—'एक बात कहूं, मानोगी?'

'क्यों नहीं मानूंगी!' कंचन के इस वाक्य में आत्मसमर्पण का जो प्रबल भाव था, वह मधुकर से छिपा न रहा।

उसने कंचन की आंखों में उमड़ती हुई मदिरा देखी—काली पुतलियों में यौवन का मधुर उथल-पुथल देखा—उठती-बैठती छातियों में जवानी का कंपन देखा और वह भूल गया अपने-आपको। अन्धी जवानी, आवेश का उफान पाकर तड़फड़ा उठी।

'आओ—इधर आओ, कंचन!' एक भंवरे का आमंत्रण था यह, कली का पराग लूटने के लिए।

सकुचाई-सिमटी-सी कली कुछ बोल न पाई।

और तब निर्मोही भंवरा मदहोश कली के चारों ओर मंडराने लगा। कली उसके मादक गुनगुन स्वर को सुनकर जैसे बेहोश-सी हो गई। अपने आप तक का ज्ञान न रहा उसे। वह भंवरे के स्वर पर मदमस्त हो झूमने लगी। मधुकर ने लपककर कंचन को लिहाफ के अन्दर खींच लिया। दो जवानियां घुल-मिलकर एक हो गईं।

—इसी उपन्यास में से

डायमंड पाकेट बुक्स में

सदाबहार उपन्यासकार

कुशवाहा कान्त

के उपन्यास



नीलम	10.00	दानव देश	6.00
चूड़ियाँ	10.00	निर्मोही	6.00
मंजिल	6.00	आहुति	6.00
कुंकुम	6.00	अपना पराया	6.00
भंवरा	6.00	पागल	6.00
इशारा	6.00	बसेरा	6.00
अकेला	6.00	खून का प्यासा	6.00
जलन	6.00	सरोज (गीतारानी कुशवाहा)	10.00
लवंग	6.00		

कुशवाहाकान्त हिन्दी उपन्यास जगत पर पिछले 40 वर्षों से छाए हुए हैं। श्रृंगार रस, क्रांतिकारी लेखनी व जासूसी कृतियों में उनका कोई सानी नहीं है।

डायमंड पाकेट बुक्स ... दरियागंज, नई दिल्ली-110002

कुशवाहा कान्त



निर्मोही

प्रकाशक :
डायमण्ड पाकेट बुक्स (प्रा० लि०)
२७१५, दरियागंज (मो ी महल के पीछे)
नई-दिल्ली-११०००६
वितरक :
पंजाबी पुस्तक भंडार
दरीबा कलां, दिल्ली-११०००६
मूल्य : छः रुपये
मुद्रक : जी० आर० प्रिंटर्स, ९/३३९९, गांधी नगर, दिल्ली-३१

NIRMOHI (NOVEL) — KUSHWAHA KANT

Rs. 6/-

श्री मान

दो शब्द

प्रिय पाठको,

डायमण्ड पाकेट बुक्स में इस सदी के सबसे प्रसिद्ध उपन्यासकार कुशवाहा कान्त के उपन्यास प्रकाशित करके हम गौरव का अनुभव कर रहे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'निर्मोही' लेखक का एक लोकप्रिय उपन्यास है—जो हमें विश्वास है, आपको भी पसन्द आयेगा।

यदि आप चाहते हैं कि हर माह इसी प्रकार के रोचक उपन्यास आपको घर बैठे प्राप्त होते रहें तो आप डायमण्ड पाकेट बुक्स की 'अपने घर में अपनी लायब्रेरी योजना' के सदस्य बन जाएं। हर महीने तीन पुस्तकें २४ रु० के स्थान पर २० रु० की वी० पी० द्वारा भेजी जाती हैं, डाक व्यय भी फ्री। साथ ही क्रिकेट वर्ल्डकप (रिलायन्स कप) के अपटूडेट रिकार्ड फ्री प्राप्त करें। आज ही ५/-रुपये सदस्यता शुल्क भेजें।

आशा है आप भी लाखों पाठकों की तरह इस योजना से लाभ उठाएंगे।

सधन्यवाद !

—प्रकाशक

निर्मोही

चूड़ियां खनक उठीं। गोरे-गोरे हाथों में मधुर कंपन हुआ। पतली उंगलियों ने पकड़ी हुई पुस्तक नीचे रख दी। सुन्दर नासिका ने श्रम की श्वास खींची और पुष्ट वक्षस्थल एक बार कांपकर पुनः बेहोश हो गये। मदभरे नयन खिड़की के बाहर, बादल के एक सफेद टुकड़े पर सवार होकर नीले आकाश पर विचरण करने लगे। बड़ी ही सुन्दर लग रही थी वह, जैसे चन्द्रमा का सारा स्निग्ध सौंदर्य लूटकर उसने अपने मुख पर मल लिया हो— जैसे गुलाब की सारी लालिमा उसके कपोलों पर उतर आई हो—जैसे शहद की सारी मधुरता उसके होंठों पर आ बसी हो—

विभोर था मधुकर। एकटक देख रहा था उसके सौंदर्य की ओर। इतना मादक था उसका रूप कि मधुकर के नेत्र नशे से लाल-लाल हो उठे।

~~पंजाब~~ मेल तीव्र गति से भागी जा रही थी। सेकेण्ड क्लास का डिब्बा था और उसी में बैठे थे दोनों—मधुकर और वह युवती!

सिवा उनके, डब्बे में और कोई न था।

कानपुर से दोनों साथ ही सवार हुए थे और तब से वह युवती बराबर मौन रही थी। हां, कभी-कभी वह अपने मदभरे नयन घुमाकर तिरछे-तिरछे मधुकर की ओर देख अवश्य लेती थी और तब दोनों के नेत्र एक-दूसरे से टकरा उठते थे, और दोनों के अवयवों में एक अव्यक्त बेचैनी भर जाती थी।

'क्या मैं वह पुस्तक देख सकता हूं···?' मधुकर का साहस-पूर्ण प्रश्न था।

युवती का ध्यान भंग हुआ। उसके मदभरे नयन बादलों की सवारी करना छोड़कर मधुकर के उल्लसित नेत्रों से जा मिले। मधुर सिहरन-सी दौड़ गई उन दोनों के हृदय में।

और तब युवती के सुकोमल हाथों ने वह पुस्तक उठाकर मधुकर की ओर बढ़ा दी। बोली वह कुछ नहीं।

मधुकर ने पुस्तक ले ली। उलट-पुलटकर देखा तो 'लवंग' थी।

'कैसी है यह पुस्तक···?' पूछा मधुकर ने। वह उस सौंदर्यमयी युवती से बातें करना चाहता था।

युवती ने मन्द मुस्कान के साथ उत्तर दिया—'अच्छी है।'

और तब कुछ देर तक दोनों एक-दूसरे के नेत्रों की पुतलियों में न जाने क्या खोजते रहे।

'आप उपन्यास पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं क्या?' युवती ने पूछा मधुकर से।

'जी नहीं, छोटी-छोटी भावपूर्ण कहानियां ही मुझे पसन्द आती हैं···।' मधुकर ने उत्तर दिया—'यों उपन्यास कोई बुरी चीज नहीं।'

'क्या मैं आपका नाम जान सकती हूं···?' कहते-कहते युवती के कपोलों पर लज्जा ने अपनी लाल तूलिका फेर दी।

'जी हां! अवश्य···!' मधुकर ने कहा-—'मेरा नाम मधुकर है···।'

'रहते कहां हैं आप···?'

'कानपुर में···।'

'कहां जा रहे हैं?'

पूछते-पूछते युवती कुछ सकुचा-सी गई। उसे लगा, जैसे एक अपरिचित युवक से इतनी खुलकर बातचीत करना ठीक नहीं।

'मिर्जापुर जा रहा हूं···अपने एक मित्र से मिलने···।' उत्तर दिया मधुकर ने।

इस बार युवती चुप रही। फिर कोई प्रश्न नहीं पूछा उसने।

मधुकर ने उसके मादक नयनों में देखा तो उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे उनमें मदिरा का अगाध सागर लहरा रहा है, जैसे उनमें मधुकर के लिए शुभ सन्देश भरा हो, हृदयग्राही मूक आमन्त्रण हो।

युवती की अवस्था यौवन-द्वार चूम रही थी। ऊपर से आधुनिक परिधान ने उसके यौवन को मादक बना दिया था।

मधुकर युवक था। अभी इसी साल कालेज से बी० ए० पास किया था। उस के परिवार में उसकी मां के अतिरिक्त और कोई न था। धनाभाव उसके मार्ग का कंटक था, फिर भी वह प्रसन्न था।

उसकी भाव-भंगिमा, उसकी सुन्दर मुखाकृति, उसका डील-डौल सब-कुछ अद्वितीय था।

मौन सन्देश चल रहे थे दोनों ओर से। एक-दूसरे की आंखों की भाषा पढ़ रहे थे वे।

'क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूं?' पूछा स्निग्ध वाणी में मधुकर ने।

'जी नहीं...।'

कहकर शोखी से मुस्करा पड़ी वह...और उसकी अपनत्व भरी उस मुस्कुराहट ने मधुकर को निहाल कर दिया।

'आपका परिचय जानने की मेरी बहुत इच्छा है...।' मधुकर ने अपनी उत्सुकता प्रकट कर दी।

'परन्तु इन्सान की हर एक इच्छा पूरी नहीं होती...।' युवती के अधरों पर एक क्षण के लिए बिजली चमक उठी।

चुप रहा मधुकर। सोचा उसने, शायद वह अपना परिचय बताना नहीं चाहती। परिचय जानने के लिए वह अधिक हठ भी नहीं कर सकता, क्योंकि अभी घनिष्ठता प्रेम की सीमा तक नहीं पहुंची थी।

लाचार वह पुस्तक पढ़ने लगा और वह युवती पुनः एकाग्रमन हो खिड़की के बाहर भागते वृक्षों को देखने लगी।

मधुर हवा के झोंकों ने उसके यौवन को गुदगुदा कर, ब

जाने कब उसके नयन-कोटरों में नींद भर दी—मधुकर को उसका सो जाना अच्छा न लगा। वह पुस्तक पढ़ता रहा।

थोड़ी देर में पंजाब मेल हांफती हुई इलाहाबाद स्टेशन पर आ खड़ी हुई और एक टी० टी० आई० ने टिकट जांचने के लिए डब्बे में प्रवेश किया। मधुकर ने अपना टिकट उसके हाथ में दे दिया।

वह युवती अभी तक निद्रामग्न थी, शायद कोई मधुर स्वप्न देख रही थी।

'यह तो हुआ आपका टिकट···।' चेकर बोला—'मगर आपकी देवी जी का टिकट कहां है···?'

चौंक पड़ा मधुकर ! पुनः कुछ सोचकर बोला—'माफ कीजियेगा। एक टिकट हमसे खो गया है। आप चार्ज कर सकते हैं···।'

चेकर ने रुपये लेकर रसीद दे दी और बाहर चला गया। पंजाब मेल पुनः तीव्र तति से भाग चली।

'हां तो आपकी देवी जी कहां हैं ?'

स्वर सुनकर चौंक पड़ा मधुकर। देखा तो युवती जाग गई थी और मोहक भंगिमा से मधुकर की ओर देखकर पूछ बैठ थी।

'कौन देवी जी···?' मधुकर ने पूछा।

'जिनके लिए अभी-अभी आपने टिकट बनवाया है···।'

मधुकर का मुंह आरक्त हो उठा, कहा उसने—'बात यह है कि आपको नींद आ गई थी, इसलिए मैंने आपका जगाया जाना पसन्द नहीं किया।'

'धन्यवाद···!' युवती बोली—'मगर टिकट तो मेरे पास था ही—आपने व्यर्थ ही रुपये फेंक दिए।'

'मुझे आपके आराम का अधिक ख्याल था, इसलिए···' कहते-कहते रुक गया मधुकर और उत्सुक नेत्रों ने देखा उस युवती की ओर, जिसके सौन्दर्य ने उसके हृदय में हलचल मचा दी थी।

युवती भी एकटक उसी की ओर देख रही थी। जरा-सा शरमाकर बोली—'आपने मुझ पर बड़ी कृपा की।'

यह सच था कि दोनों के हृदय एक-दूसरे के बहुत समीप

आ गए थे। रेल के निर्जीव डिब्बे में इनका यह मिलन, मानो एक मधुमय मिलन था।

मधुकर को यह चिन्ता अवश्य थी कि युवती ने अब तक अपना कुछ भी परिचय नहीं बताया था और न तो यही बताया था कि उसे कहां जाना है।

तभी मिर्जापुर स्टेशन पर गाड़ी झटके के साथ खड़ी हो गई। मधुकर को यहीं उतरना था। उस युवती से पृथक् होने की आशंका ने उसे निर्जीव बना दिया था। युवती उसके चेहरे से उसके हृदय का भाव भांपगई। सहज मुस्कान के साथ बोली, 'घबड़ाइये नहीं आप। हमारी मित्रता का यहीं अन्त न होगा। हम और आप फिर मिलेंगे…।'

परन्तु मधुकर समझ नहीं पा रहा था कि वह उसे कहां मिलेगी…? अपना छोटा-सा सूटकेस उठा लिए उसने और युवती को मौन अभिवादन करके चल दिया।

'मधुकर! ठहरो…!'

पीछे से आवाज आई। मधुकर ने घूमकर देखा तो उसका मित्र जीवन खड़ा था। मधुकर के आने की सूचना पाकर वह उसे स्टेशन लेने आया था। मधुकर को देखकर जीवन बहुत प्रसन्न था। आज बहुत दिनों के बाद दोनों मिले थे। मधुकर और जीवन कानपुर में कालेज के सहपाठी थे। दोनों में खूब पटती थी। पर अपने पिता के अचानक स्वर्ग सिधार जाने से, जीवन को अपनी पढ़ाई से हाथ धोना पड़ा और वह कानपुर से मिर्जापुर चला आया। अब साल भर से वह घर पर ही रह-कर अपना व्यापार देखता है।'

जीवन शहर के धनीमानी सेठों में गिना जाता है। वह 'जीवन लैक फैक्टरी' का मालिक है। लाख का यह बहुत बड़ा कारखाना, उसी की सम्पत्ति है।

जीवन के बहुत अनुरोध करने पर आज पहले-पहले मधु-कर मिर्जापुर आया है। इसके पहले वह कभी जीवन के घर नहीं आया था।

'बहुत दुबले हो गए हो मधुकर…।' जीवन मधुकर को ऊपर से नीचे तक देखता हुआ बोला।

'और तुम बहुत मोटे हो गए हो न…?' मधुकर ने व्यंग

किया।

एक था गरीब—एक था अमीर! मगर दोनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। जीवन कभी यह न सोचता था कि वह धनवान है, उसे एक निर्धन से मित्रता नहीं करनी चाहिए···और न तो मधुकर ही कभी यह सोचता था कि वह गरीब है, उसे एक अमीर की सहानुभूति नहीं प्राप्त करनी चाहिए।

दोनों मित्र बातें करते-करते बाहर आए। बाहर जीवन की बग्घी खड़ी थी। दोनों बैठ गये उसमें और बग्घी चल पड़ी।

'मेरी चिट्ठी तुम्हें मिली थी न···?' मधुकर ने पूछा।

'मिली थी, तभी तो स्टेशन तक आ सका।' कहा जीवन ने।

'तुमने अब तक अपनी शादी नहीं की?'

'अभी तो पिताजी के मरने के बाद से व्यापार सम्हालने में लगा हूं···' जीवन बोला—'शादी तो होगी ही, जल्दी क्या है? अभी कंचन है ही, मेरी देख-रेख कर लेती है वह···।'

जीवन की बहन का नाम कंचन था। उसके परिवार में भी केवल दो ही प्राणी थे—कंचन और वह!

'कंचन कौन···?' मधुकर कुछ सोचते हुए बोला—'तुम्हारी बहन का नाम है न, कंचन···!'

'हां! तुमने तो कभी उसे देखा नहीं—बड़ी बातूनी और चंचल है—तुम्हें देखकर बड़ी खुश होगी—तुम्हें देखने की उसे बहुत लालसा भी है···मगर आजकल तो वह लखनऊ गई हुई है। आशा है, एक-दो दिन में आ जाएगी···तुम्हारी माता जी तो सकुशल हैं न?'

'उनकी मत पूछो···।' मधुकर ने कहा—'अब जितने दिन चल रही हैं, उतने ही दिन बहुत हैं···!'

'बूढ़ी भी तो हो चुकी हैं बहुत···।'

'हां···! और अब तो उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा है···कूट-पीसकर, नौकरी-चाकरी कर उन्होंने मुझे इतना पढ़ाया-लिखाया, मगर मैं अब भी कुछ कमाने लायक न हुआ···।'

'तुम तो मूर्ख हो···।' जीवन मधुकर को झिड़की देता हुआ

बोला—'पचास बार पत्र लिखा कि अन्य किसी जगह भटकने की आवश्यकता नहीं। तुम अपनी मां को लेकर यहीं चले आओ और मेरे काम में हाथ बटाओ। मेरा अकेलापन भी दूर हो जाएगा, मगर हज़रत मेरी सुनेंगे कैसे···?'

'भाई ! मैं क्या करूं ? माताजी जब मानें, तब तो···? मेरे मन की कोई बात तो है नहीं···।'

तभी जीवन की भव्य अट्टालिका के सामने आकर बग्घी रुक गई। नौकर-चाकर दौड़ पड़े और आज्ञा की प्रतीक्षा में हाथ बांधकर खड़े हो गए। आश्चर्य हुआ मधुकर को यह देखकर कि, दो आदमियों के कुटुम्ब में इतने सेवक !

मधुकर जब अट्टालिका के भीतर पहुंचा, तो वहां की आधुनिक सजावट देखकर दंग रह गया।

पैसे की माया चारों ओर हाथ पसारे खड़ी थी।

बाथरूम में जाकर हाथ-मुंह धो लो और कपड़े भी बदल डालो।' जीवन ने कहा।

एक नौकर ने नम्रतापूर्वक बाथरूम का रास्ता बता दिया।

बाथरूम में घुसा तो चौंक पड़ा मधुकर। सामने ही एक कमसिन तथा सुन्दर नौकरानी खड़ी थी।

'आप कौन हैं···?' पूछा मधुकर ने।

'यह बाथरूम मेरे जिम्मे है···।' नौकरानी ने मुस्कराकर कहा—'मालिक को तेल लगाना, नहलाना मेरा काम है···'

मधुकर को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे जीवन पर माया का भूत पूर्णरूपेण सवार हो गया है। यों तो वह अपने विद्यार्थी-जीवन में भी विलासप्रिय था। परन्तु यहां के रंग-ढंग देखकर, मधुकर समझ गया कि जीवन के दिन विलास में ही व्यतीत होते हैं और तभी वह विवाह की आवश्यकता नहीं समझता। जहां नहलाने और तेल लगाने के लिए सौन्दर्यमयी नौकरानियां हों, वहां के विलास-वैभव का क्या पूछना !

'मैं आपकी क्या सेवा करूं ?' युवती नौकरानी ने पूछा।

'कुछ नहीं···!' मधुकर बोला—'मैं सब-कुछ स्वयं ही कर लूंगा। तुम बाहर जा सकती हो···।'

नौकरानी बाहर चली गई। मधुकर ने देखा—पास ही

उसके पहनने के लिए मूल्यवान कपड़े रखे हैं।

उसने साबुन से हाथ-मुंह धोया, तौलिया से पानी सुखाकर बाहर आया तो जीवन को अपनी प्रतीक्षा करते पाया।

'अरे यह क्या…? तुमने कपड़े नहीं बदले?'

जीवन ने आश्चर्य से पूछा।

'क्या होंगे बदलकर? अभी तो यही कपड़े ठीक हैं…' लजाते हुए मधुकर ने कहा। उसे लगा, जैसे यहां का अगम वैभव उसकी निर्धनता का उपहास कर रहा हो।

'बड़े बेहूदे हो तुम…!' जीवन बोला—'मैं कहता हूं कि कपड़े बदल डालो, नहीं तो पास बैठने नहीं दूंगा तुम्हें।'

जीवन की झिड़की में एक सच्चे मित्र का प्यार टपक रहा था।

मधुकर पुनः बाथरूम में जाकर कपड़े बदल आया।

नौकर ने चाय की ट्रे लाकर मेज पर रख दी। दोनों मित्र सोफे पर बैठकर चाय पीने लगे।

'एक कप मेरे लिए भी, भैया…!' दरवाजे पर से आवाज आई।

जीवन ने उधर देखा। बोला—'तू आ गई कंचन…? कब आई?'

'अभी तो चली आ रही हूं।'

'मधुकर…!' जीवन बोला—'यह मेरी बहन कंचन है।' मधुकर आश्चर्यपूर्ण भंगिमा से कंचन की ओर देख रहा था!

वही सौन्दर्य! वही चंचलता! वही हंसमुख स्वभाव!

जिसे पंजाब मेल के डिब्बे में देखकर वह आत्मविस्मृत-सा हो उठा था, जिसके हाव-भाव ने उसके अन्तराल में मधुर गुदगुदी की सृष्टि कर दी थी, जिससे बिछुड़ने का विचार उसके लिए भयंकर चिन्ता का कारण बन बैठा था—वही इस समय खड़ी थी उसके सामने।

चित्रलिखित-सा बैठा रहा मधुकर। कंचन भी आकर सोफे पर बैठ गई और ट्रे में से एक प्याला चाय बनाकर पीने लगी।

'ये तो मधुकर हैं न…?' वह बोली—'मैं इनसे मिल चुकी

हूं...।

'कहां ?' चौंककर जीवन ने प्रश्न किया।

'इसी ट्रेन से हम दोनों साथ-साथ आये हैं...।' कंचन ने मधुकर की ओर मुस्कराकर देखते हुए कहा—'मैंने इनका परिचय पूछा, बताते ही मैं इन्हें पहचान गई, मगर ये मुझे नहीं पहचान सके...।'

'जब तू इन्हें पहचान गई थी तो साथ क्यों नहीं लाई ?' पूछा जीवन ने।

'मैं बिस्तर समेटने लगी थी कि यह भाग खड़े हुए। मेरा इसमें क्या कसूर ?' बोली कंचन।

'मुझे यदि आपका परिचय मिल जाता तो आपको साथ लेकर ही आता...' मधुकर ने भूल स्वीकार करते हुए कहा।

'भैया...!' कंचन जीवन से बोली—'इन्होंने मुझे टिकट के रुपये उधार दिए हैं...।'

'टिकट के रुपये...!'

'हां भया ! सच कहती हूं, मैं बिना टिकट के ही आ रही थी, तो टिकट चेकर ने पकड़ लिया और आपने मेरे टिकट के रुपये दे दिए...'

कंचन शरारती हंसी हंस रही थी और नेत्रों के कोरों से मधुकर की ओर देख रही थी।

'क्यों मधुकर ! तुम तो अपने को बहुत गरीब बनते हो। यह उधार देने का रोजगार कबसे शुरू किया ?' हंसकर बोला जीवन।

सकुचा गया मधुकर।

'और क्यों री कंचन...!' जीवन ने कंचन से प्रश्न किया, 'तेरे रुपये सब क्या हुए जो तूने मधुकर से उधार लिए ?'

'क्या बताऊं भैया...?' बनावटी संजीदगी से बोली कंचन—'रुपये तो सब लखनऊ में ही सफा हो चुके थे और जो कुछ बचे थे, वे कानपुर की भेंट चढ़ गए।'

'तेरे सर चढ़ गये...।' झिड़ककर बोला जीवन—'देखा न इस नालायक लड़की को ! रुपये धूल में फेंकती चलती है। जरा भी कमखर्ची नहीं सीखी इसने। अक्ल होती तब तो रुपये का मूल्य समझती...।'

'तुम्हीं बहुत रुपये का मूल्य समझते हो न…।'

'चुप रह, नहीं तो मार बैठूंगा—जाते समय सात सौ रुपये लेकर गई थी और सब रास्ते में फेंक आई…क्या-क्या लाई है, मुझे दिखा…देखूं तो सही?'

'मैं नहीं दिखाती…!' कंचन तुनककर बोली—'मारोगे तुम भैया? पर कोई ज्यादा चीजें थोड़े ही खरीदी हैं…।'

'क्या-क्या खरीदा है?' पूछा जीवन ने।

'दस साड़ियां, तीन ब्लाउज, सात पेटीकोट, पांच सैंडिल, एक दर्जन अफगान स्नो, एक दर्जन कमानियां आयल और दो सेट सोने की चूड़ियां और इयरिंग—बस यही तो खरीदा है।'

'इतना सब क्या करेगी—खायेगी क्या? घर में तो भरी पड़ी हैं ये चीजें! अजीब लड़की है…।'

'एक चीज तुम्हारे लिए भी लाई हूं, भैया?' कंचन ने कहा।

'क्या लाई है…?'

'कंघी…!'

तो मधुकर और जीवन ठठाकर हंस पड़े।

जीवन ने मधुकर से शिकायत की—'देखा न मधुकर! कितनी शैतान है यह लड़की, अपने लिए दुनिया भर का सामान खरीद लाई है और मेरे लिए चार आने की कंघी…।'

'तुम तो मेरी हंसी उड़ाते हो भैया…!' कंचन बोली—'कंघी तुम्हारी टूट गई थी, इसीलिए सोचा लेती चलूं—शाबास देना तो दूर रहा, लगे हंसी उड़ाने…।'

'अच्छा-अच्छा, बन्द कर अपनी बकवास…!' जीवन ने कहा—'मैं जरा कारखाने जाता हूं—तब तक तुम मधुकर को खिला-पिलाकर उससे बातचीत करना। जरा भी शरारत करेगी, तो मार खायेगी…याद रखना।'

जीवन चला गया, तो कंचन के मुख पर गम्भीरता छा गई। ठीक वैसी ही गम्भीरता, जैसी कि मधुकर ने रेल में देखी थी।

मधुकर इन दोनों भाई-बहन का स्निग्ध प्रेम तथा मधुर झड़पें देखकर अत्यन्त प्रसन्न था। उसका हृदय पहले ही कंचन

—निर्मोही

की गिरफ्त में आ चुका था, इसलिए प्रसन्नता असीम हो गई थी।

कंचन के अन्तस्तल में भी उथल-पुथल मची हुई थी। उसे लग रहा था, जैसे वह अनजाने में ही अपना दिल खो बैठी है।

कुछ देर तो सन्नाटा रहा।

फिर मधुकर ने पूछा—'आप पढ़ती हैं?'

'अब नहीं पढ़ती—इसी साल हाई स्कूल पास करके छोड़ दिया है।' कंचन ने सलज्ज भाव से कहा।

मधुकर देख रहा था, जो कंचन अपने भैया के रहने पर पूर्ण रूप से चंचल प्रतीत होती थी, वही अब छुईमुई-सी सिकुड़ती जा रही है।

'वह फ़ोटो आपकी ही है न···?' मधुकर ने दीवार पर टंगे हुए चित्र की ओर संकेत करके पूछा।

कंचन का हृदय न जाने क्यों धड़क रहा था। इतनी घबड़ाहट उसे कभी नहीं हुई थी। उसने छोटा-सा उत्तर दे दिया—'जी हां।'

'पोज तो अत्यन्त सुन्दर है···।' बोला मधुकर।

कंचन का मुख जैसे अबीर-सा लाल हो उठा। पसीने-पसीने हो गई वह, अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर।

दोनों एक ही सोफे पर बैठे थे, एक दूसरे के एकदम पास।

एकाएक मधुकर की अंगुलियां कंचन के हाथ से छू गईं तो सिहर उठा कंचन का सारा शरीर, मगर उसने हाथ हटाया नहीं।

एक क्षण तक दोनों उस स्पर्श का आनन्द लेते रहे।

कंचन के लिए यह सर्वथा नवीन और मादक अनुभव था। वह भूलती जा रही थी अपने-आपको।

'आप चुप क्यों हो गईं?' मधुकर ने एकटक उसके मद-भरे नयनों की मदिरा पीते हुए कहा।

चौंक पड़ी कंचन! बोली—'क्षमा कीजिएगा···एक बात सोचने लगी थी···।'

'कोई बात नहीं, परन्तु सफर में आपने गहरा धोखा दिया मुझे···' मधुकर बोला—'रेल पर ही परिचय दे देतीं, तो

कितना अच्छा होता। हम दोनों एक-दूसरे के और निकट आ जाते···।'

'अब भी तो निकट ही हैं, दूर थोड़े ही हैं।' धीरे-से कहा कंचन ने—'और मैंने तो धोखा दिया नहीं था, धोखा तो मर्द।'

'जी नहीं, औरतें भी मर्दों से पीछे नहीं हैं···।' बीच ही में बोल उठा मधुकर।

'आप मुझे कभी ऐसा न पाएंगे···।'

'तुम भी मुझे कभी ऐसा न पाओगी, कंचन!'

आवेशपूर्ण भंगिमा से मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ लिया। बड़ी देर तक सुकोमल हाथों को सहलाता रहा। कंचन बेहोश-सी बैठी रही···यह उसका आत्म-समर्पण था।

२ ८

सवेरा हुआ तो उषा हंस पड़ी। कुलबेरा की पंखुड़ियां स्वच्छ जल पर छितरा गईं। ठण्डी हवा के झोंके, सोये हुए लोगों को गुदगुदाने लगे। चिड़ियां प्रातः जागरण का मधुर सन्देश सुनाती हुई उड़ चलीं।

कंचन की नींद खुल गई। उठकर वह बाहरी कमरे में आई। देखा—मधुकर उससे पहले ही जाग चुका है, और एक बड़े-से चित्र के सामने खड़ा होकर उसे ध्यानपूर्वक देख रहा है। चित्र कंचन का था।

कंचन भीतर चली आई। पूछा उसने—'क्या देख रहे हैं आप?'

मधुर संकुचित-सा हो उठा। चौंककर बोला—'कुछ नहीं, यह चित्र देख रहा था—यह तुम्हारा ही चित्र है न···?'

'शायद!' सोफे पर बैठती हुई कंचन ने कहा।

'मुझे भी यही शक है!' मधुकर भी आकर सोफे पर बैठ गया।

'क्या आप मेरी सूरत भी पहचान नहीं सकते···!' कंचन बोली—'कल रात में भी आपने यही प्रश्न किया था और आज फिर वही प्रश्न दोहरा रहे हैं···'

'मैं भ्रम में पड़ा हूं, कंचन···!' मधुकर ने कहा।

'कैसा भ्रम?'

'सोचता हूं कि यह तुम्हारा चित्र है या आसमान की परी का···ऐसा मनोहर चित्र मैंने कभी नहीं देखा था···

'शायद आपने कभी देखने का प्रयत्न ही नहीं किया था; नहीं तो दुनिया में एक से एक अद्वितीय चित्र हैं।'

कंचन के मदभरे नयनों ने, भवों की कमान पर एक घातक तीर चढ़ाकर छोड़ दिया। मधुकर का दिल घायल पंछी की तरह तड़प उठा उस तीर की चोट खाकर।

'जो भी बात हो···' मधुकर ने कहा—'मगर वास्तव में चित्र बहुत सुन्दर है···'

'आपको पसन्द आया···?' बोली कंचन।

उसके कपोल लज्जा से गुलाबी हो रहे थे। नेत्र-कोटरों में मदिरा छलक आयी थी। वक्षस्थल तीव्र धड़कनों के साथ उठ-बैठ रहे थे।

'बहुत पसन्द आया मुझे···' कहा मधुकर ने।

'तो उतारकर जेब में रख लीजिये···'

कंचन की मुखाकृति पर लज्जायुक्त हास्य के साथ-साथ मादक आकर्षण प्रस्फुटित हो उठा।

'चित्र बहुत बड़ा है। जेब में आ नहीं सकता···' बोला मधुकर—'हां, दिल में रख सकता हूं इसे···'

चुप रही कंचन···! मधुकर की बातों ने आज जीवन में पहली बार उसे यौवन की मादकता का ज्ञान कराया था। बड़ी अच्छी लग रही थीं उसे मधुकर की बातें···! उसे लगा जैसे उसके शरीर में उष्णता लहरा उठी हो, जैसे उसके चारों ओर शराबी वातावरण लहरा उठा हो और वह मदहोश-सी उसी में डूब-उतरा रही है। उसने मधुकर की ओर देखा तो तुरन्त ही सिहर कर आंखें नीची कर लीं।

मधुकर एकटक उसके कपोलों पर प्रस्फुटित गुलाब की लाली को देख रहा था। उसकी पुतलियां उसे यौवन का मधुर आमन्त्रण दे रही थीं। उसका उल्लसित शरीर कब कंचन के मादक शरीर के सम्पर्क में आ रहा, यह कंचन न जान सकी।

जब मधुकर की एक गर्म सांस कंचन के अधरों पर लोट गई तो वह चौंक उठा। परिस्थिति का ज्ञान हो आया उसे। वह उठ खड़ी हुई। बोली—'भैया अभी तक सोये हैं, जाकर उन्हें

जगा दूं।'

मधुकर भी चैतन्य हो गया था।

'क्या अब तक सोये ही हैं···?' उसने कहा—'चलो मैं भी चलता हूं···अजीब आलसी आदमी हैं!'

दोनों जीवन के कमरे में आये। देखा, जीवन लिहाफ में मुंह छिपाये मीठी नींद ले रहा है। मधुकर ने उसे पुकारा, परन्तु वह जागा नहीं। तब कंचन ने मेज पर से टाइमपीस घड़ी उठाकर उसका एलार्म बजा दिया। घण्टी की टन-टन की आवाज से कमरा गूंज उठा।

'क्यों री कंचन···!' जीवन ने लिहाफ में से थोड़ा-सा मुंह निकालकर कहा—'सुबह-सुबह क्या तूफान मचा रखा है? बन्द कर एलार्म!' कहकर उसने पुनः लिहाफ में अपना मुंह छिपा लिया।

एलार्म बजता ही रहा तो जीवन लिहाफ के भीतर से बोला—'कहता हूं एलार्म बन्द कर दे, नहीं तो उठकर कान ऐंठ दूंगा···'

'अरे भाई, उठो भी! सबेरा हो गया है···' मधुकर ने कहा।

'ओह मधुकर! तू भी कम शैतान थोड़े ही है। सुबह के चार बजे नहीं कि तू मुर्गे की तरह बांग देने आ पहुंचा। जाकर नाश्ता-पानी कर, मैं अभी आता हूं···' जीवन बोला।

'बिना तुम्हारे मैं नाश्ता नहीं करूंगा, उठो तुम!' मधुकर ने जीवन का लिहाफ पकड़कर खींच लिया।

खिसियाकर बोला जीवन—'लो! अब तक तो एक ही आफत थी, अब दो हो गये। मधुकर! जाओ तुम अपने घर, मेरी तुमसे नहीं निभेगी। अपना बोरिया-बिस्तर उठाकर चल दो पहली गाड़ी से···'

'उठते हो या पानी मंगवाऊं···?' मधुकर बोला।

'ठहरो भाई···!' चौंककर उठ बैठा जीवन—'सुबह-सुबह किस वाहियात चीज का नाम ले रहे हो तुम लोग, मुझे सोने थोड़े ही दोगे।'

आधे घण्टे बाद दोनों मित्र नाश्ते की मेज के पास आ बैठे। कंचन ने चाय की ट्रे और बिस्कुट का डिब्बा लाकर रख

दिया।

तीनों चाय पीने लगे।

'वह तूने क्या छिपा रखा है···?' जीवन ने पूछा।

'यह तो आमलेट है, भैया···' कंचन ने कहा—'क्या करूं दो ही आमलेट बन सके···'

'तो दोनों तू ही खायेगी···?' जीवन बोला—'ला इधर, दो का तीन हिस्सा कर दूं···।'

झपटकर जीवन ने कंचन से आमलेट की तश्तरी छीन ली और तब तीन हिस्सा करके, बराबर-बराबर बांट दिया।

ग्यारह बजे जीवन कारखाने चला गया और तब उस विशाल भवन में केवल दो पंछी रह गये—दो पंछी ! जो दुनिया के बंधनों से परे एक अलग दुनिया बसाने की धुन में थे—जो प्यार भरी राशि से तिनके चुन-चुनकर अनोखा नीड़ तैयार करना चाहते थे—जो प्रेम के झकोरों का मधुर सहारा पाकर बादलों से ऊपर उड़ जाना चाहते थे।

'चलिए ! बाग में चला जाये···!' कंचन ने कहा।

जीवन के विशाल मकान के पीछे, एक सुन्दर बाग था। उसमें फल और फूलों के पौधे बहुतायत से थे, जगह-जगह लताकुंज और गुमटियां बनी थीं। एक छोटा-सा पक्का तालाब था। पानी की सतह पर कुलबेरा के फूल हंस रहे थे···। दोनों बाग में घूमने लगे। वहां की छटा देखकर उन दोनों का यौवन प्रबल उत्साह से भर गया।

कंचन !' मधुर वाणी में पुकारा मधुकर ने।

'कहिए···!' कंचन का शरीर मधुकर के निकट आ रहा।

मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ लिया। पूछा—'तैरना जानती हो तुम ?'

'हां···' छोटा-सा उत्तर दे दिया कंचन ने।

'तो चलो—तैरने का थोड़ा आनन्द लिया जाय···'

'चलिये···' और दोनों छोटे-से तालाब की खूबसूरत सीढ़ियां उतरने लगे। एक-दूसरे से सटकर नीचे उतर रहे थे दोनों, कि एकाएक कंचन का पैर फिसल गया, शायद मधुकर की मादक बातचीत से कंचन का शरीर सिहर उठा था और

उसके पैर आवेश में कांप रहे थे—यही था फिसल पड़ने का कारण।

पैर फिसल पड़ने के कारण कंचन अवश्य गिर पड़ती, यदि मधुकर के कम्पित हाथों ने उसकी देह को अपनी बांहों में संभाल न लिया होता। यह प्रथम अवसर था, जब उनके शरीर ऐसी मादक परिस्थिति में एक-दूसरे के सम्पर्क में आये थे।

बड़ी देर तक वे दोनों उस निर्जन तालाब पर एक-दूसरे से आबद्ध खड़े रहे और एक-दूसरे को अपने हृदय की धड़कन सुनाते रहे।

चौंक पड़े वे, सामने एक पेड़ पर से कोयल की कूक सुनकर…और तब एक-दूसरे से अलग होकर तालाब के किनारे आये। सूक्ष्म कपड़े पहने हुए वे दोनों तालाब में कूद पड़े और तैरने लगे।

तालाब के स्वच्छ वक्षस्थल पर कुलबेरा के पत्ते फैले हुए थे। उनकी डण्ठलों ने पानी के भीतर एक जाल-सा बना रखा था और उस जाल में एकाएक कंचन के पैर जा फंसे। उसने बहुत कोशिश की पैर निकालने की, मगर सफल न हो सकी।

'क्या है?' पूछा मधुकर ने।

'कुलबेरा ने मुझे पकड़ लिया है…' कंचन मुस्कराकर बोली।

'क्या मांगता है?' हंसकर पूछा मधुकर ने।

'यह तो आप ही पूछिए आकर।'

मधुकर कंचन के पास आया। उसका सुन्दर शरीर अपनी गोद में लेकर, उसके पैर के बन्धन छुड़ा दिये और तब एक कुंज में आकर बातें करने लगे दोनों—'एक बात बताओगी कंचन?'

'पूछिये…!' कंचन ने मधुकर की आंखों में अपनी आंखों की मदिरा भर दी।

'यह सब तुम्हें पसन्द है?'

'क्या?' कंचन ने अनजान बनकर पूछा।

'अनजान न बनो, कंचन…!' मधुकर ने कहा—'तुम सब समझती हो।'

'मैं कुछ नहीं समझती…' कंचन का कलेजा धड़क रहा था—'आप ही समझा दीजिये…'

'समझा दूं ?' मधुकर अपनी बेकली सम्हाल न सका। उसके उल्लसित हाथों ने आगे बढ़कर कंचन को समेट लिया। उसके अधर कंचन के अधरों पर लोट पड़े। कंचन को लगा जैसे किसी ने मदिरा का प्याला भरकर उसके होंठों से लगा दिया हो, जैसे मधुकर ने अपने अधरों से उसे बेहोशी की दवा पिला दी हो।



दिन और रात की गोरी और श्यामल परियां, संसार पर अपने पंख फैलाती हुई उड़ती चली गईं। कंचन और मधुकर के हृदय दूध-पानी की तरह एक होते गये।

कितने ही दिनों तक उस सघन कुंज में उन्होंने एक-दूसरे के वक्षस्थल को अपने हृदय की धड़कनें सुनाई थीं, 'कितने ही दिन, ऊनी लिहाफ ने उनके शरीरों को अपने में समेटकर, उनके धधकते हुए प्रेम पर तृप्ति की वर्षा की थी।

जीवन तो व्यस्त रहता था। दिन को अपने रोजगार में और रात को रासरंग में। उसे मधुकर और कंचन के तड़पते हुए दिल का पता न लग सका। वह तो प्रसन्न था कि मधुकर कंचन के साथ रहता है, अन्यथा उसके कार्य में बाधा पड़ती।

हां···! तो एक रात···! आसमान पर बादलों की होड़ मच गई। बिजली कड़की तो ऐसा लगा जैसे सारा आकाश उस हवेली पर गिर पड़ा हो। पानी बरसने की आवाज तेजी से बढ़ती गई।

चौंककर कंचन पलंग पर उठ बैठी। बादलों की गरज, बिजली की चमक और मूसलाधार पानी का हर-हर शब्द सुनकर उसका कलेजा कांप उठा। उसे भय लगने लगा।

अपने भैया के कमरे में आई तो देखा कि वे अब तक लौटे नहीं हैं। उनकी पलंग अकेली पड़ी इंतजारी में सिसक रही है। आधी रात हो आई थी। कंचन धड़कते हुए कलेजे से मधुकर के दरवाजे पर आ खड़ी हुई और धीरे से दरवाजा खोलकर भीतर जा रही।

मधुकर की नींद उचट गई थी। वह जाग रहा था। कंचन को देखकर उसका रोम-रोम पुलक उठा—'कंचन! तुम ?'

बोला वह—'बात है ?'

'क्या बताऊं···? भैया अभी तक नहीं आये हैं।'

'अब वे आज रात नहीं आयेंगे, कंचन···! ऐसे आंधी-पानी में वे नहीं आ सकते···आओ बैठो !'

'कहां होंगे वे···?' पूछा कंचन ने कम्पित स्वर में।

'उसकी चिन्ता मत करो तुम···!' बोला मधुकर—'इस समय वह किसी रंगशाला में पड़ा होगा···।'

'क्या कहते हैं आप ?'

'ठीक कह रहा हूं, कंचन···! आज का यह मौसम अकेले रहने का नहीं—अकेले रहने से तो डर लगने लगता है।'

मधुकर के नेत्र अगम प्यार लिए कंचन की आंखों से जा मिले।

'डर तो मुझे भी लगा, इसीलिए भैया के कमरे में गई थी। वे नहीं मिले तो आपके पास चली आई···।' कंचन ने कहा।

उसी समय बिजली कड़की और कंचन के शरीर का सारा बोझ मधु र के सीने पर आ रहा। मधुकर को जाने कैसी मद-होशी का आभास मिलने लगा। आधी रात। सुनसान मकान। गरजते हुए बादल, तड़पती हुई बिजली। मूसलाधार पानी। अरमान भरे हृदय और सिसकती हुई जवानी।

'कंचन···!' पुकारा मधुकर ने।

'कहिए···। कंचन की आंखें आधी बन्द थीं' आधी खुली। यौवन-भार संभालना, शायद कोमल पलकों के लिए मुश्किल था।

'डर लग रहा है न !' मधुकर ने कहा—'एक बात कहूं, मानोगी ?'

'क्यों नहीं मानूंगी।' कंचन के इस वाक्य में आत्मसमर्पण का जो प्रबल भाव था, वह मधुकर से छिपा न रहा।

उसने कंचन की आंखों में उमड़ती हुई मदिरा देखी—काली पुतलियों में यौवन का मधुर उथल-पुथल देखा—उठती बैठती छातियों में जवानी का कम्पन देखा और वह भूल गया अपने-आपको। अन्धी जवानी, आवेश का उफान पाकर तड़-फड़ा उठी।

'आओ—इधर आओ, कंचन।' एक भंवरे का आमन्त्रण था यह, कली का पराग लूटने के लिए।

सकुचाई, सिमटी-सी कली कुछ बोल न पाई।

और तब निर्मोही भंवरा मदहोश कली के चारों ओर मंडराने लगा। कली उसके मादक गुनगुन स्वर को सुनकर जैसे बेहोश-सी हो गई। अपने आप तक का ज्ञान रहा उसे। वह भंवरे के स्वर पर मदमस्त हो झूमने लगी। मधुकर ने लपककर कंचन को लिहाफ के अन्दर खींच लिया दो जवानियां घुल-मिलकर एक हो गईं।

उसी समय आकाश पर फिर जोरों की बिजली कड़की। मधुकर ने कंचन को कसकर समेट लिया। कंचन के अंग-अंग टूटकर ढीले हो रहे थे। उसे तन-बदन का होश न था। यह अनुभव उसके लिए नवीन एवं मादक था। भंवरा बेहोश कली पर जा बैठा।

और दूसरे ही क्षण कोमल कली का पराग लुट गया। अपनी चिर-संचित यौवन-निधि लुटाकर अस्त-व्यस्त-सी हो उठी वह कोमल कली।

कंचन चेतनाहीन हो रही थी। मधुकर ने प्यार से उसे थपथपाया तो वह वास्तविक संसार में आई। अपनी दुर्दशा देखकर फफक-फफककर रो उठी वह। उसे महान आत्मग्लानि हो रही थी।

वह सिसकती रही मधुकर के कलेजे से लगी हुई। मधुकर ने उसे और भी पास खींचकर कहा—'कंचन! रोती हो तुम···?'

'तुमने मुझे लूट लिया, मधुकर···।' बोली कंचन।

'ऐसा न कहो रानी···! मैं स्वयं लुट गया हूं।'

'मेरा यह आत्मसमर्पण यदि आपके हृदय में स्थायित्व पा सका तो मैं अपने को धन्य समझूंगी···।'

'यह तुम क्या कहती हो कंचन! मैं तुम्हारा हूं और सदा तुम्हारा ही रहूंगा···।'

ये तो रटे-रटाये शब्द हैं, जिन्हें हर प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए प्रयोग करता है। कंचन यह जानती है, पर बोली कुछ नहीं। सिसकती रही।

□ □

मधुकर और कंचन पर मदहोशी ने कुछ ऐसा रंग जमाया कि वे बेहोश-से हो उठे और सारी दुनिया की सुधबुध भूलकर एक-दूसरे में लीन हो गये। दो महीने इस तरह व्यतीत हो गये जैसे दो घण्टे।

इस बीच जवानी के सुख के लिए सर्वस्व निछावर करने वाली कंचन ने उसे पानी तक के लिए नहीं पूछा था और अपनी मां के लाड़ले बेटे मधुकर ने उसे एक पत्र तक न लिखा था। वह भूल गया था अपनी मां को और बुढ़िया दादी को भी, जिसके मकान में दोनों मां-बेटे निःशुल्क रहा करते थे और जो अपनी आत्मीय न होते हुए भी आत्मीय-सा प्यार करती थीं। अपनी मां के सख्त बीमार होने के दो-तीन पत्र मिल चुके थे उसे, परन्तु उनकी अवहेलना कर वह अपने ही राग-रंग में मस्त था।

उस दिन कंचन और मधुकर आस-पास सोफे पर बैठे थे। जीवन अपने कारखाने पर था। दोपहर का समय था।

'कंचन···!' धीरे से पुकारा मधुकर ने, स्नेहसिक्त वाणी में।

अकस्मात् लज्जा की लालिमा उसके कपोलों पर दौड़ गई, वह सलज्ज भाव से बोली—'कहिये, क्या कहना चाहते हैं?'

'तुम आजकल उदास क्यों रहती हो···?' पूछा मधुकर ने—'पहले की चंचलता, वे रसभरी बातें, वे आंखों के इशारे —सब न जाने क्या हुए? अब तो तुम पत्थर की मूर्ति जैसी हो गई हो, एकदम अटल। क्या बात है, रानी···?' मधुकर ने कंचन का हाथ पकड़ा तो लगा जैसे वह कांप रही है—'बोलो कंचन! मेरी बातों का उत्तर दो···!'

'क्या उत्तर दूं आपकी बातों का···?' लजाकर सिमटी हुई बोली वह—'आप स्वयं समझदार हैं, समझ सकते हैं···।'

मधुकर हंस पड़ा—'अच्छा! तो तुम यह चाहती हो कि हमारा विवाह जल्द हो जाये···। मगर रानी, इतनी जल्दी क्या पड़ी है? फिर भी यदि तुम इसी कारण उदास रहती हो तो मैं किसी दिन जीवन से तुम्हें मांग लूंगा। मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह इनकार नहीं करेगा।'

'मगर यह कार्य आप जल्दी कीजिये...।' बोली कंचन—'मैं कैसे बताऊं आपको कि...।' असलियत कंचन की जबान पर आ-आकर रुक जाती थी। गला फंस-फंस जाता था। फिर भी मधुकर उसका संकेत न समझ सका।

आज महीनों से कंचन मधुकर से विवाह के लिए जल्दी कर रही थी, मगर मधुकर बराबर टालता जा रहा था। इसलिए नहीं कि वह कंचन को धोखा देना चाहता था, वरन् बात यह थी कि जब-जब वह जीवन के सामने अपने विवाह की बात लेकर जाता, उसकी जबान ही जड़ हो जाती थी, कलेजा धड़कने लगता था और परेशानी लिए हुए लौट आता था। मगर वह कंचन की परेशानी से सर्वथा अनभिज्ञ था। वह क्या जानता था कि उस आंधी-पानी भरी रात की वह काली करतूत, कंचन की गोद में सजीव होने जा रही है...?

वह क्या जानता था कि उन दोनों का क्षणिक आवेश, कंचन के अन्तराल में एक अनोखे जीव की सृष्टि कर रहा है? वह क्या जानता था कि जो कार्य दुनिया की आंखों में धूल झोंककर किया गया था, वह स्वयं एक शिशु का रूप धारण कर दुनिया के सामने उनकी पोल खोलने आ रहा है...? मधुकर यह सब नहीं जानता था। जानती थी केवल कंचन!

और उसने इशारों द्वारा मधुकर को बताने की चेष्टा की थी, परन्तु वह अनुभवहीन युवक न समझ सका।

इधर लज्जा ने कंचन का मुंह इतना कसकर जकड़ा हुआ था कि वह कुछ साफ-साफ बोल ही नहीं पा रही थी।

परिस्थिति अन्धकार में ही रही। उसी अन्धकार में वह 'पाप' दो महीने का रूप धारण कर चुका था और तब कानपुर से एक दिन मधुकर की मकान-मालकिन का, जिसे वह बुढ़िया दादी कहता था, एक पत्र मिला। लिखा था—बच्चा!

वहां जाकर तो तू हम सभी को भूल गया। जान पड़ता है कि वहां का हवा-पानी तुझे बहुत पसन्द आ गया है और इसलिए तू अपनी दादी, अपनी मां तक को भी भूल बैठा। कई पत्र भेजे, परन्तु किसी का जवाब न मिला। यह पत्र देखते ही तुरन्त चले आओ। यदि तुम्हारे हृदय में उस निरीह मां के लिए कुछ भी प्रेम अवशिष्ट है, तो तुरन्त चल पड़ना। वह इस

दुनिया से जाने के पहले एक बार तेरी सूरत, भर आंख देख लेना चाहती है। उसकी तबीयत अब-तब हो रही है, वह मां है, मरने से पहले अपने निर्मोही बेटे को कलेजे से लगाना चाहती है। जरूर आना बच्चे !

—तुम्हारी दुखिया दादी

पत्र पढ़कर मधुकर पर जैसे वज्रपात हुआ, दिल धड़क उठा उसका। सोचने लगा वह—तो क्या उसकी मां इतनी बीमार है कि कोई आशा बचने की नहीं रह गई है? क्या सच-मुच उस पर से मां का साया उठ जाने वाला है? उफ्! वह भी कितना निर्मोही है कि यहां यौवन-प्रवाह में पड़कर मातृ-प्रेम की स्निग्ध धारा का तिरस्कार कर बैठा !

'मां···!' रो उठा मधुकर का हृदय ! आंखों में आंसुओं का सागर उमड़ पड़ा। गाल भीग गये उसके। लगा, जैसे अब वह मां को नहीं देख सकेगा। कुर्सी पर बैठा हुआ वह अपनी ग्लानि को आंसुओं के रूप में बहिर्गत कर रहा था कि उसी समय आ गई कंचन !

उसकी यह दशा देख वह चौंक पड़ी। हाथ से पत्र ले लिया उसने। पढ़ा और तब उसे भी प्रतीत हुआ, जैसे सचमुच वह निर्मोही है। जो व्यक्ति अपनी मां का दूध भूल सकता है, वह क्या कंचन जैसी परायी नारी का प्रेम नहीं भूल सकता !

'घर से पत्र आया है। लगता है मां की तबीयत बहुत खराब है, तभी तो ऐसा लिखा है···मगर यह दादी कौन है?' पूछा कंचन ने।

'यह दादी···।' मधुकर बोला—'मेरी सगी नहीं हैं। मैं इन्हीं के मकान में लड़कपन से ही रहता आया हूं। मां को और मुझे, ये बहुत प्यार करती हैं। अपना सगा भी इतना प्यार नहीं कर सकता···।'

'तो आप एक बार जाकर मां को देख आइये···।' कहा कंचन ने।

'अवश्य जाऊंगा···और आज ही···।'

'मगर जाने से पहले एक बार भैया से 'वह' पूछ लीजिये।' हिचकते हुए कंचन ने कहा।

'कंचन···।' उसका हाथ पकड़कर बोला मधुकर—'इस

समय मेरी दशा शोचनीय है। मां की बीमारी के समाचार ने मुझे असंतुलित कर दिया है। ऐसी अवस्था में जीवन से बात कहना क्या उचित होगा। मैं आज जा रहा हूं। अच्छा हो आप आकर सारी बातें जीवन से तय कर लेना। तुम घबराओ नहीं...।'

'न जाने क्यों आपके जाने की बात सुनकर दिल बेचैन हो रहा है। मैं आपसे कैसे बताऊं कि आपने मेरा सर्वस्व लूटकर मुझे एक अमिट दाग दे दिया है। मैं मर जाऊंगी मधुकर ! यदि तुम शीघ्र न लौटे।'

अब भी नहीं समझा मधुकर ! पहेली वह कैसे समझ सकता था ?

बोला—'धीरज रखो रानी ! मैं जल्द लौटूंगा...।'

उसी समय आ गया जीवन—तो मधुकर ने उसे सारी बातें बताकर जाने की अनुमति मांगी।

जीवन ने कहा—'तुम्हारी मां की तबीयत खराब है. ऐसी दशा में तुम्हें कैसे रोक सकता हूं मैं ? जहां तक हो सके जल्द लौटना, तुम्हारे रहने से कंचन का जी बहला रहता है...।'

जीवन ने कितनी यथार्थ बात कही थी। उसने प्रत्यक्ष रूप से मधुकर और कंचन का आकर्षण देखा था और वह प्रसन्न था। कंचन उसकी लाड़ली बहन थी। वह उसके लिए सब-कुछ कर सकता था। उसे हंसाने के लिए आसमान के तारे भी तोड़-कर ला सकता था।

और मधुकर तो उसका अनन्य मित्र ही था। उन दोनों की जोड़ी देखकर जीवन फूला न समाता था। उसकी हार्दिक कामना यही थी कि युगल जोड़ी शीघ्र ही प्रणयसूत्र में आबद्ध हो जाये। मगर वह स्वयं बात उठाना नहीं चाहता था। चाहता था वह कि मधुकर इस बात को लेकर आगे बढ़े।

परन्तु मधुकर तो था लजीला—बात उठाने से शरमाता था। हां ! तो उसी दिन मधुकर कानपुर को रवाना हो गया। उसका कलेजा अनिष्ट की आशंका से बार-बार कांप उठता था।

पंजाब मेल तेजी से भागी जा रही थी और सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में बैठा मधुकर विचारों में डूब-उतर रहा था।

धनहीन होने पर भी वह सदैव सेकेन्ड क्लास में ही चलता था। आज वह उस डिब्बे में अकेला था। अकस्मात उस दिन की बात याद हो आई, जिस दिन इसी गाड़ी में कंचन को उसने पहले-पहल देखा था। एक मादक सिहरन-सी भर उठी उसके रग-रग में। वह कुछ क्षणों के लिए अपनी मां की शोचनीय अवस्था का ध्यान भूल गया। डिब्बे की सूनी छत पर तेज़ी से नाचते हुए पंखे की तरह, उसकी विचारधारा भी नृत्य करने लगी।

उसका ध्यान तब भंग हुआ जब गाड़ी इलाहाबाद स्टेशन पर आ खड़ी हुई और किसी कोमल कण्ठ से निकला स्वर उसके कान में अमृत-वर्षा कर उठा—'हलो मिस्टर मधुकर…!'

मधुकर ने चौंककर सिर घुमाया तो देखा—सौन्दर्य की एक साक्षात् प्रतिमा खड़ी थी, मुस्कराते हुए।

'हलो, मिस कलाकुमारी। आओ, आओ।'

कलाकुमारी मधुकर की सहपाठिनी थी। दोनों एक ही कालेज में पढ़ते थे। घनिष्टता भी काफी थी। उन दोनों में और कॉलेज के मनचले युवकों ने उनकी घनिष्टता पर कीचड़ भी उछाले थे।

कला का घर कानपुर में ही था। वह आकर मधुकर की बगल में बैठ गई। पूछा—'कहां से आ रहे हो तुम…?'

'मिर्जापुर जीवन से मिलने गया था, वहीं से आ रहा हूं।' बोला मधुकर—'और तुम कहां से आ रही हो…?'

'बम्बई से…'

'ओह! शायद अपने पिता से मिलने गई थीं?'

'हां…!' कला बोली—'पत्र आया था उनका, बुलाया था मुझे…।'

'किस लिए बुलाया था…?' मधुकर के नेत्र, प्रश्न लिए हुए कला की बड़ी-बड़ी आंखों से जा मिले—'कोई आवश्यक कार्य था क्या?'

'आवश्यक ही समझो…।' कला ने कहा—'वे चाहते हैं कि अब मैं आगे न पढ़कर, उनके काम में हाथ बटाऊं…मेरा कोई भाई तो है नहीं कि उनकी सहायता करेगा और मैं बी० ए० पास कर ही चुकी हूं। अब आगे पढ़कर क्या करना है…?'

'तुम्हारे पिताजी का 'सागर बैंक लिमिटेड' कैसा चल रहा है ?'

'अच्छा चल रहा है···।' बोली कला—'अब तो उसकी शाखा पूना में भी खुल गई है···।'

'मगर तुम्हारे पिताजी को कानपुर में ही बैंक खोलना था, मेरी समझ से, घर से उतनी दूर बम्बई में जाकर खोलना तो किसी प्रकार उचित नहीं हुआ···।' मधुकर ने कहा।

'आगे क्या करने का विचार है तुम्हारा···?' मधुकर की बात उठाकर कला पूछ बैठी—'अभी और आगे पढ़ोगे या नहीं ?'

कुछ बोल न सका मधुकर। अभी तक उसने भविष्य पर कुछ विचार तक नहीं किया था। उसने कला की ओर शून्य दृष्टि से देखा और उसे लगा, जैसे कला की आंखों में आज 'कुछ' ऐसा आकर्षण है, जैस और पहले कभी न था।

आज से पहले अनेकों बार उसने कला के साथ एकान्त में घण्टों बैठकर वार्तालाप किया है—अनेकों बार दोनों ने आधी-आधी रात तक बैठकर लॉजिक पढ़ी है—पॉलिटिक्स पर दोनों सैकड़ों बार झगड़ते-झगड़ते छीना-झपटी तक कर बैठे हैं—मगर तब मधुकर के हृदय में कला के प्रति कभी ऐसा भाव उदय नहीं हुआ था और न तो कला के ही नेत्रों में 'वह' दिखाई पड़ता था, जो 'कुछ' आज दृष्टिगोचर हो रहा है।

'तुमने मेरी बातों का उत्तर नहीं दिया ?' कला बोली।

और मधुकर को लगा जैसे कला का स्वर आवश्यकता से अधिक नम्र हो उठा है और वाणी की स्थिरता में कुछ कम्पन आ गया है। एक क्षण तो वह कला की काली पुतलियों की भाषा पढ़ता रहा, फिर बोला—'क्या बताऊं कला ! अभी तो कुछ निश्चित नहीं कर पाया हूं···'

'कुछ-न-कुछ तो निश्चित करना ही पड़ेगा···' कला ने कहा।

'क्या निश्चित करूं ?···अर्थाभाव के कारण आगे पढ़ सकना असम्भव है···'

'अर्थाभाव ?···' चौंककर बोली कला—'ऐसा क्यों कहते हो मधुकर ! यह न भूलो कि मैं तुम्हारे पीछे हूं···'

कला ने ये वाक्य कुछ ऐसे ढंग से कहे थे कि मधुकर विल-लित हो उठा। उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से कला की ओर देखा। न जाने क्यों कला के कपोलों पर लालिमा दौड़ गई।

यह सच था कि कला ने आज तक मधुकर पर कितने ही अहसान किये थे और उन अहसानों से मधुकर का रोम-रोम ऋणी था।

पिछले चार साल से कला और मधुकर साथ-साथ एक ही कॉलेज में पढ़ते आ रहे थे। इस बीच कला ने उसे क्या-क्या सहायता दी, शायद मधुकर गिनती करने पर भी नहीं बता सकता। रुपये-पैसों से लेकर छोटी से छोटी वस्तुओं तक का उसे अभाव नहीं होने दिया था कला ने।

इस भोली युवती की, न जाने कैसी सहानुभूति थी मधुकर पर!

'ऐसी बातें तुम क्यों सोचते हो मधुकर…?' कला ने सहसा मधुकर का हाथ पकड़ लिया। मधुकर का शरीर झन-झना उठा—'क्या हमारी दोस्ती का यही निष्कर्ष निकाला तुमने…? अफसोस कि तुम वर्षों मेरे साथ रहने पर मुझे समझ न सके…'

'कला!…' मधुकर ने कहा—'मेरे कहने का तात्पर्य तुम्हारा हृदय व्यथित करना नहीं था। तुम्हारे उपकारों को भूल जाना मेरे लिये असम्भव है। काश! मैं तुम्हारे उपकारों का बदला चुका सकता…'

'तुम बदला चुकाना चाहते हो?' कला के होंठों पर था मधुर हास्य और नेत्रों में था मादक हलाहल!

'हां! यदि मेरी अधिकार-सीमा से परे न हुआ तो…'

'अधिकार-सीमा उल्लंघन करने की धृष्टता नहीं करूंगी मैं।'

'तब कहो?'

'तुम मेरे साथ बम्बई चलो…' कला ने कहा—'मैं पिताजी से कहकर अपने बैंक में तुम्हें नौकरी दिलवा दूंगी…मैं भी अब वहीं जाकर रहूंगी। इस तरह हमारी मित्रता जीवनपर्यन्त जीवित रहेगी।'

'कला!…' मधुकर जरा-सा खिसककर कला के एकदम

पास आ रहा।

'कहो !' बोली कला।

'तुम उपकार पर उपकार करके मुझे एकदम से दबा देना चाहती हो !···एक क्षुद्र प्राणी के प्रति तुम्हारे हृदय में इतनी ममता क्यो !'

'किसी के हृदय में बैठकर कोई देखे, तब तो ममता का कारण मालूम हो ?···' धीरे से कला ने कहा।

मधुकर कुछ सोचता हुआ बोला—'इसमें मेरी मां की अनुमति की आवश्यकता है। यदि उनकी आज्ञा मिल गई, तो मैं अवश्य तुम्हारे साथ बम्बई चलूंगा।'

मधुकर के हृदय में मानसिक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था। कला के प्रति उसकी हार्दिक सहानुभूति बहुत पहले से थी। वह सहानुभूति अब घनिष्टता का रूप धारण कर चुकी थी। उसे लगा, जैसे वह वेगवती धारा में बहा जा रहा है, जैसे उसे अपनी मानसिक अशान्ति पर विजय पाना असम्भव है, जैसे वह कंचन जैसी कोमल कालिका के साथ विश्वासघात कर रहा है··· ।

कानपुर स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो वेगवती धारा में बहते उसके मन को ठहराव मिल गया। दोनों अपना-अपना संक्षिप्त सामान ले उतर पड़े।

उसी समय उनका एक मित्र मिल गया। नाम था दिनेश। आकृति आकर्षक थी उसकी, मगर हृदय में हलाहल भरा था। कला के रिश्तेदारों में से था। दूर का कोई रिश्ता था। यही कारण था कि कला को मधुकर के प्रति आकर्षित देखकर वह जल-भुन जाता। चाहता था वह कि कला उसकी अंकशायिनी बने। वह कला का रिश्तेदार है, अतः कला पर केवल उसी का एकाधिकार है।···वह नहीं चाहता था कि कला मधुकर जैसे गरीब के पीछे अपनी मधुर आशाओं को भस्मीभूत कर दे।

कला और मधुकर को गाड़ी से साथ-साथ उतरते देखकर दिनेश की भवें तन गईं। उसकी मुखाकृति पर घृणा नृत्य करने लगी।

कला और मधुकर, दोनों ने दिनेश का वह भाव लक्ष्य किया।

'कहां से आ रहे हो तुम लोग ?···' हृदय की असीम

घृणा छिपाकर पूछा दिनेश से।

'बम्बई से!...' कला ने कहा।

'मिर्जापुर से!...' मधुकर बोला।

'कला! तुमने तो मुझसे कलकत्ता मिलने का वादा किया था न!' दिनेश कला को लक्ष्य कर बोला—'उस दिन मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही करता रह गया।'

'माफ करना दिनेश...!' कला बोली—'पिताजी का पत्र मिला तो मुझे तुरन्त बम्बई जाना पड़ा। पिताजी ने अपने बैंक की एक शाखा पूना में भी खोल दी है। कुछ नये क्लर्कों की आवश्यकता है। पिताजी ने तुम्हें बुलाया है।'

'मुझे बुलाया है...' हर्षित होकर बोला दिनेश—'अवश्य चलूंगा मैं। कब चल रही हो तुम?'

'जल्दी ही चलूंगी, मधुकर भी साथ चलेंगे...'

'मधुकर भी!...' दिनेश का हर्ष क्षण मात्र में विलीन हो गया। लाल-लाल आंखों से उसने मधुकर की ओर देखा। मधुकर को लगा, जैसे दिनेश उसके ऊपर झपटना चाहता है।

चलते-चलते पूछा कला ने—'तुम अपने किस दोस्त से मिलने गये थे, मधुकर...! नाम तो तुमने बताया ही नहीं...?'

'बताया तो, जीवन से!' बोला मधुकर।

'जीवन से...' कला जीवन को अच्छी तरह से जानती थी। वह भी उसी कालेज का विद्यार्थी रह चुका था—'क्या कर रहा है आजकल वह?'

'क्या करेगा?...' मधुकर ने कहा—'पिताजी के मर जाने पर अब अपना कारोबार देख रहा है...।'

'अमीर है, तभी तो हम लोगों की सुध भूल गया है और इतने दिन हुए एक पत्र भी नहीं लिखा...' कला बोली।

'बात यह है कि वह बहुत व्यस्त रहता है...' मधुकर ने जीवन की ओर से सफाई देते हुए कहा—'मुझसे तुम्हारे विषय में पूछ रहा था...'

कला का मुख आरक्त हो उठा उन दिनों की बात सोच-कर, जबकि जीवन कला के लिए सब-कुछ करने को तैयार था। उसने अपना स्निग्ध-शीतल प्रेम उसके सामने उड़ेलकर, प्रेम का प्रतिदान मांगा था, तो कला ने उसे पत्थर की तरह ठुकरा

दिया था।

फिर भी बुरा नहीं माना था जीवन ने। कला के सामने यह प्रतिज्ञा करके कि, विवाह करेगा तो केवल उसी से अन्यथा जीवन भर अविवाहित रहेगा, चला गया था वह…और तभी से जीवन का कार्यक्रम अस्त-व्यस्त रहा करता था। वह गोलियों की सुन्दरता में लिप्त रहकर कला की कठोरता को भूलना चाहता था।

मधुकर जानता था कि जीवन के हृदय में कला के लिए प्यार है, परन्तु कला उस प्यार को स्वीकार नहीं कर रही है। उसने उसे समझाने की कोशिश कई बार की थी, परन्तु असफल रहा। कला के समक्ष तो केवल मधुकर की प्रतिमा थी।

कला से विदा लेकर मधुकर अपने घर की ओर पैदल ही चल पड़ा। थोड़ी ही दूर पर उसका घर था। दरवाजे पर भीड़ देखकर वह चौंक पढ़ा। आंखों के आगे अन्धेरा छा गया था, पास ही तैयार की हुई बांस की बनी टिकटी देखकर।

'मां!…' उसका हृदय करुण चीत्कार कर उठा।

उसी समय उस घर की मालकिन, बुढ़िया दादी दौड़ी हुई आई और मधुकर के आगे गिर पड़ी। मधुकर ने उसे उठाया। पुकारा—'दादी!'

'आ गया तू…' रोते-रोते दादी बोली—'आ गया निर्मोही! बेचारी तेरा नाम रटते-रटते मर गई और तू अब आया है…'

'मां!…' चिल्लाकर रो पड़ा मधुकर। आंगन की ओर दौड़ा जहां उसकी मां की काया पड़ी हुई थी। पिंजरा खाली पड़ा था। पक्षी उड़ गया था।

'मां।…' कहता हुआ मधुकर उस ठठरी पर गिर पड़ा। लोगों ने दौड़कर उसे उठाया। कुछ ने सान्त्वना दी।

मगर मधुकर का हृदय जल रहा था। उसने अपनी मां के साथ अन्याय किया था—विश्वासघात किया था। बेचारी चैन से मर भी न सकी। अपने निर्मोही बेटे को देखने की अन्तिम लालसा हृदय में लिए चली गई वह।

चकोरी तड़पती हुई स्वाति-जल की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु उमड़ते-घुमड़ते काले बादल के दो बूंद कभी न बरसे ! चकोरी की चोंच में तृप्ति की बूंदें नहीं पड़ीं। तड़पती रही वह !

कंचन चकोरी बनकर, मधुकर के स्वाति-बूंद से सिंचित पत्र की प्रतीक्षा करती रही और उसके दर्शन की अगम लालसा हृदय में दबाये रही।

पोस्टमैन रोज उसके यहां आता। अन्य स्थानों की ढेर की ढेर चिट्ठियां दे जाता, परन्तु उनमें मधुकर का एक भी पत्र नहीं रहता था।

भंवरा कली का पराग चूसकर उड़ गया था। सोच रही थी कली, अब वह निर्मोही नहीं आयेगा।

कंचन की दशा दिन पर दिन शोचनीय होती जा रही थी। उसका अब किसी काम में जी नहीं लगता था, स्वास्थ्य बालू की भीत के समान भरभरा रहा था। अपने पेट में जो पाप छिपाये थी कंचन, उसका उभार बाहर से झलकने लगा था और अब यह आवश्यक था कि शीघ्र उसका विवाह हो जाय, अन्यथा पेट का उभार देखकर सभी सन्देह करने लगेंगे। और तब—

तब कंचन के श्वेतांचल में सदैव के लिए काला धब्बा लग जायगा—उसके भैया जीवन का मस्तक लज्जा से नत हो जायगा।

भय से, आवेग से सिहर उठा कंचन का शरीर। वह बैठी न रह सकी। सोफे पर लेट गई। सिसकियां लेने लगी। मेज पर रखी हुई चाय ठण्डी हो चली थी, परन्तु कंचन का ध्यान उस ओर न था। वह तो अपनी दुर्दशा पर खून के आंसू बहा रही थी।

उसी समय आ गया जीवन। कंचन को सिसकियां लेते हुए देखकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ। उसने उसके दुःख के कारण का यही अनुमान लगाया था कि मधुकर के चले जाने का कंचन को अत्यधिक शोक है। परन्तु कितनी असहिष्णु है

गई !

एक वह है—जिसने कला को अपने हृदय में बिठाया, उसकी पूजा की, मगर वह निर्दयी लड़की उसकी पूजा को, उसके हृदय को, उसके अरमानों को कुचलकर चल दी। फिर भी जीवन व्यथित नहीं हुआ।

आज उसके हृदय में आग है, परन्तु वह आग को भभक पड़ने का अवसर नहीं देता।

और एक यह है नादान छोकरी कंचन !

जैसे रो-रोकर मर जाना चाहती है। मधुकर के पीछे एकदम दिवानी हो गई। जरा भी धैर्य नहीं है इसमें ! आखिर मधुकर कभी न कभी तो आयेगा ही। वह इतना निर्मोही नहीं हो सकता। जीवन कंचन के पीछे आकर खड़ा हो गया और उसके सर पर अपना प्यार भरा हाथ रख दिया। वह चौंक पड़ी।

'भैया !...' उसने झटपट अपने आंसू पोंछ लिए और सूखे चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट लाने का प्रयत्न किया।

वह एकान्त में रो सकती थी, एकान्त में सिसक सकती थी, एकान्त में अपना सर फोड़ सकती थी—मगर वह यह नहीं चाहती थी कि जीवन उसके नयन-कोटरों में आंसू देखकर दुःखी हो।

'तू रो रही थी ?...' स्निग्ध वाणी में पूछा जीवन ने।

'नहीं तो भैया !' बात बनाई कंचन ने।

'हृदय की व्यथा, आंखों से आंसू बनकर टपक ही पड़ती है, कंचन ! इसे छिपाने से कोई लाभ नहीं !...आज महीनों से देख रहा हूं कि तू न जाने कैसी हुई जा रही है ? न ठीक से खाना खाती है, न ठीक से नाश्ता करती है। चेहरे की हंसी न जाने कहां खो गई है। लाख बार पूछा, मगर तू अपना दुःख बताती ही नहीं और मैं देखता हूं कि तू किसी कष्ट में घुलकर अपने को नष्ट करने पर तुली है...मुझे बता कंचन ! तुझे क्या दुःख है ? तुझे कौन-सी वेदना है ?...'

'मुझे कोई दुःख, कोई वेदना नहीं है, भैया !...'

'ठीक है नादान लड़की !...' हैरान होकर बोला जीवन —'तू मुझसे अपना दुःख क्यों बताने लगी ? देखता हूं तू दिन

पर दिन विचित्र प्रकृति की हुई जा रही है···जब तक मधुकर था, तब तक बहुत खुश थी तू ! वह चला गया तो रो रही है ?···क्या मैं इतना भी नहीं समझता पगली ?'

'भैया !···' कंचन रो पड़ी जीवन की गोद में गिरकर।

कंचन अभागिन थी। लड़कपन से ही उसने मां का प्यार नहीं पाया था और पिता भी उसे मझधार में छोड़कर चल बसे थे। उसने प्यार पाया है तो अपने भैया— जीवन से !

जिसने उसके सुख-शान्ति का सदैव ध्यान रखा, जिसने पहले उसे खिलाया और फिर आप खाया, जिसने उसे मां और पिता की मृत्यु का शोक नहीं मालूम होने दिया, जिसने उसे प्यार किया, डांट-डपटकार दे-देकर दुलारा, जिसने उसे लड़-झगड़कर, छीना-झपटी कर उसके हृदय में निर्मल भ्रातृ-स्नेह की धारा बहा दी—कितने सुखी थे वे दोनों ! सुनहरा संसार था उनका ! परन्तु मधुकर जैसे उनके जीवन में ज्वाला बनकर आ खड़ा हुआ। उस ज्वाला ने उन दोनों भाई-बहनों की हरी-भरी दुनिया जलाकर नष्ट कर दी।

जीवन कंचन के सर पर ममतापूर्ण हाथ फेरता हुआ बोला—'कंचन, अपने को संभाल। मधुकर चला गया तो क्या वह फिर आयेगा नहीं ?···जरूर आयेगा। उसके लिये शोक न कर···।'

'ऐसा जान पड़ता है कि अब वे शायद नहीं आयेंगे भैया !···' सिसकते हुए बोली कंचन।

'वह विश्वासघात नहीं कर सकता, वह मेरा मित्र है···।' जीवन ने दृढ़ स्वर में कहा।

कुछ न बोली कंचन। वह जीवन को किस तरह अपनी परिस्थिति का ज्ञान कराती—किस तरह समझाती उसे कि यदि उसका शीघ्र मधुकर से विवाह न हुआ तो वह बाध्य होकर आत्महत्या कर लेगी···ग्लानि का अन्तिम परिणाम आत्महत्या ही तो है !

'यह क्या···?' चौंककर बोला जीवन—'तूने अभी तक नाश्ता भी नहीं किया ? और चाय भी ठण्डी हो गई ?'

'नाश्ते की इच्छा नहीं है भैया···।'

'तेरी इच्छायें सब गईं कहां ? तेरी चंचलता हुई क्या ?

वक्ष पर किसने तुषारापात कर दिया ?'

जीवन ने नौकर को बुलाकर ताजी चाय और आमलेट लाने की आज्ञा दी। तुरन्त ही ये चीजें मेज पर उपस्थित हो गईं।

जीवन ने अपने हाथों से कंचन को आमलेट खिलाया और चाय पिलाई। फिर बोला—'मैं कारखाने जा रहा हूं। ठीक समय पर स्नान कर लेना—मैं भोजन के समय आ जाऊंगा···।'

और दिन तो जीवन प्रातःकाल का गया अर्द्ध रात्रि को लौटता था। पता ही नहीं लगता था कि वह कहां रहा और क्या खाया ? परन्तु आज वह ठीक दोपहर को आ गया और कंचन को अपने साथ बिठाकर अपनी ही थाली में खिलाया।

कंचन का हृदय जल रहा था, तड़प रहा था अपने भाई का प्रेम देखकर। वह व्यथित थी, चिन्तित थी यह देखकर कि सदा प्रसन्न रहने वाला उसका भाई भी आजकल उदास रहने लगा है, परन्तु क्या करे कंचन ? उसका माथा विचार-शून्य हो गया था।

इस प्रकार एक महीना और बीता। तब एक दिन प्रातः-काल अपनी अगम-वेदना लिये हुए कंचन जीवन के कमरे में आई।

'भैया···!' धीरे से पुकारा उसने।

और वह जीवन, जो कभी घण्टों जगाये जाने पर भी लिहाफ ताने पड़ा रहता था, झट उठ बैठा। पूछा उसने—'क्या है ? है क्या कंचन ?'

'मेरी तबीयत घबड़ा रही है, भैया···!'

'अभी डाक्टर को बुलाता हूं···क्या हुआ है तुझे ?'

'कुछ नहीं हुआ है, भैया ! डाक्टर की आवश्यकता नहीं तुम एक पत्र उन्हें आज ही लिख दो···।'

'किसको ? मधुकर को···? उसे तो मैं तीन पत्र भेज चुका हूं, कंचन ! मगर उत्तर किसी एक का भी नहीं आया···।' जीवन बोला—'एक पत्र तुम भी लिखकर देखो···।'

वज्र गिर पड़ा कंचन पर। तीन पत्र भेजे थे उसने भी, पर उत्तर किसी का भी नहीं आया। निर्मोही ! निर्दयी—। रो

पड़ी कंचन। मेज के पास आ बैठी। कांपती हुई उंगलियों ने कलम उठा ली। मधुकर को पत्र लिखने लगी—निर्मोही!

तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करते-करते महीनों बीत गए, परन्तु तुमने तो कोई सुध ही न ली। वहां जाकर न जाने किसके मोह में पड़ गये कि हमारी याद ही न रही तुम्हें? मुझे तुम्हें यह लिखते हुए अत्यन्त लज्जा आ रही है कि तुम्हारे प्रेम का पौधा अंकुरित होने लगा है। ऐसी दशा में तुम्हारा यहां आना अत्यन्त आवश्यक है···।

इतने निर्मोही न बनो। एक असहाय नारी की लाज तुम्हारे हाथ है। हालत नाजुक है, ऐसी अवस्था में कहां जाऊंगी मैं? किसको अपना मुंह दिखा सकूंगी? भैया का क्या होगा···?

सच कहती हूं, अगर तुमने इस पत्र का जवाब न दिया, स्वयं न आये, तो आत्महत्या कर लूंगी मैं और तुम्हीं इस दोष के भागी होगे। तुम कभी चैन न पाओगे, कभी सुख से न सो सकोगे। तड़पोगे तुम। रोओगे तुम। हाथ मल-मलकर तुम पछताओगे तब!

तुम्हारी—कंचनमाला

पत्र भेज दिया। कंचन उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। दो सप्ताह व्यतीत हो जाने पर भी उत्तर न आना था, न आया।

▭ ▭

मधुकर की मां मरी तो उसके लिए संसार में 'अपना' कोई नहीं रह गया। रह गया वह अकेला ठोकरें खाने के लिए।

अपनी मां की मृत्यु से अत्यन्त सन्तप्त था वह। उसने मरते समय अपनी मां को जो असीम कष्ट दिया था, वह कभी भूल नहीं सकता था। उसकी याद दावानल बनकर उसके शरीर का कोना-कोना जला रही थी।

उफ! वह मां जिसने अपने जिगर का खून पिला-पिलाकर उसके कोमल शरीर को सुदृढ़ बनाया था, जिसने अनेक रात स्वयं भूखी सोकर उसे भर पेट भोजन कराया था, जिसने समाज की अवहेलना सहनकर उसे बी० ए० तक पढ़ाया था और जो मरते समय अपने निर्मोही बेटे की झलक के लिए भी तड़पती रह गई थी···।

उसी मां के न रहने पर आज मधुकर का जीवन अन्धकारपूर्ण हो उठा है। कितना निर्दयी है वह कि अपनी स्नेहमयी मां को कभी सुख न दे सका। अन्तिम समय में भी उसने उसे तड़पाया, रुलाया और··· और··· पिंजरे का वह पक्षी अपने लख्ते-जिगर की याद लिए इस संसार से दूर उड़ गया था···।

तड़प रहा था मधुकर ! आज प्रातःकाल जब उसकी नींद खुली, तो उसने देखा कि उसके गाल आंसुओं से तर हैं। शायद स्वप्न में वह अपनी मां की करुण चीत्कार सुन चुका था। स्वप्न की घटनायें एक बार उसके नेत्रों के समक्ष नाच उठीं, तब वह और भी व्यथित हो उठा—

और दिन जब वह प्रातःकाल उठने में जरा भी देर करता, तो उसकी मां हाथ-मुंह धोने के लिए पानी लेकर वहां आ पहुंचती और उसे दुलार-पुचकार कर उठाती, पर वह कहां थी अब ! मधुकर का हृदय मातृस्नेह से भर उठा। नौ बज चुके थे और वह सोया ही था। कौन जगाने वाला था उसे ? कौन उसे प्यार भरे मीठे शब्दों में देर तक सोये रहने के कारण फटकार सुनाने वाला था ?

'मैं कहती हूं कि उठ जा बैठा···! सूरज निकल आया है और मेरा चांद अभी तक सोया ही है···उठ जा लाल···!' उसकी मां कहती तो वह अनिच्छापूर्वक, आंख मूंदे-मूंदे ही उठकर चारपाई पर बैठ जाता।

'पानी···!' निद्रा के आवेग से झूमता हुआ मधुकर कहता।

और उसकी मां झपटकर लोटे में भरा हुआ पानी ले आती।

वह आंख मूंदे-मूंदे चारपाई पर बैठा हुआ धीरे-धीरे हाथ धोने लगता तो उसकी मां उसकी बन्द आंखों पर पानी का एक करारा छींटा देती और कहती—'मैं कहती हूं कि आंखें खोल बेटे···!'

कैसे सुखमय दिन थे वे। आज भी मधुकर उन सुनहरे दिनों की स्मृति भूल नहीं सका है। कभी-कभी वह सुबह उठकर चारपाई पर आंख मूंदे बैठे-बैठे पुकार उठता है—

'पानी…।'

और जब उसकी पुकार पर कोई पानी लेकर नहीं आता तो उसकी तन्द्रा भंग हो जाती है, तब उसे ध्यान आता कि अब मां इस संसार में न रही। करुण चीत्कार कर उठता है उसका हृदय।

वह अपने दुःख में लीन हो गया है आजकल! विक्षिप्त-सा हो उठता है वह! कंचन का प्रेम, जीवन की मित्रता, कला की सहानुभूति—सब-कुछ भूल गया है वह। केवल मां की याद है उसे।

वह चारपाई पर बैठकर आंसू बहा रहा था कि बुढ़िया दादी कमरे में आई। देखकर मधुकर के धैर्य का बांध टूट गया, आंखों में मचलते हुए आंसू ढुलक पड़े गालों पर।

'मधु! क्यों रोता है तू…?' दादी उसके सर पर हाथ सहलाती बोली—'तेरी मां चली गयी तो क्या…! मैं तो हूं…'

ये दुनिया वालों के समझाने की बातें हैं, मधुकर इतना जानता है। नादान नहीं है वह। वह अच्छी तरह जानता है कि जो प्यार, जो अपनापन उसे अपनी मां से मिला था, वह और किसी से नहीं मिल सकता है। इस बूढ़ी दादी में मधुकर के प्रति चाहे जितनी ममता हो, चाहे जितना अपनत्व हो, मगर वह सीमित है, असीम नहीं।

'दादी…!' मधुकर बोला—'मुझे इस समय एकान्त चाहिए। रोने दो मुझे…रोकर जी हलका कर लेने दो…।'

'रो-रोकर तो तूने अपनी आंखें सुजा डाली हैं, अब और क्या करने का इरादा, मधु…!' दादी ने कहा—'चल नाश्ता कर ले तेरे लिए हलुआ बनाया है आज…।'

'मैं नाश्ता नहीं करूंगा, दादी…!'

'क्यों…? आखिर क्यों तू रो-रोकर अपनी जान दे रहा है…?' करुण स्वर में बोली दादी—'मुझे देख। पराई होते हुए भी मैंने तुम मां-बेटे को अपना-सा प्यार दिया। आड़े वक्त पर मैंने तेरी मां का साथ दिया था और उसे अपने मकान में बेटी-सा रखा था। इस आशा में कि तू बड़ा होगा, तो मेरा बुढ़ापा कट जायेगा। दो-चार मकान जो मेरे पास हैं, वे तेरे ही तो हैं और मेरे पास अपना कौन बैठा है…?'

'जाओ दादी ! मुझे अभी अकेला छोड़ दो…।' दयनीय स्वर में मधुकर बोला—'मुझे मीठी-मीठी बातों से भुलावे में न डालो…'

मगर दादी न मानी। उसने मधुकर को ले जाकर हलुआ खिलाकर ही छोड़ा। इसी प्रकार जबरदस्ती खिलाने-पिलाने से ही मधुकर आजकल खाता-पीता था, अन्यथा उसे कुछ रुचता न था।

नाश्ता करके मधुकर एक पार्क में जा बैठा। प्रातःकाल का समय था। पार्क … दम सूना था। सूनी आंखों से धरती की छाती पर फैली हरीतिमा को देखते हुए वह दिनभर पार्क में बैठा रहा।

शाम हुई तो पार्क में लोग आने-जाने लगे, मगर मधुकर को जैसे कुछ परवाह ही नहीं थी। वह बैठा रहा चुपचाप।

'मधुकर…!' पीछे से आवाज आई, तो मधुकर ने सर घुमाकर देखा—कला खड़ी थी, आंखों में अपार आश्चर्य का भाव लिए।

कला ने देखा—उसके सामने मधुकर विक्षिप्त-सा बैठा है। शुष्क आंखें, खड़े-खड़े सर के रूखे बाल, चेहरा मलीन, कमीज फटी तथा मैली !

उसकी यह अवस्था देखकर कला को महान दुःख हुआ।

'मधुकर…!' कला आकर उसके पास बैठती हुई बोली—'यह तुम्हें क्या हो गया है, मधुकर…?'

कला की सहानुभूति, मधुकर के नेत्रों में आंसू बनकर उमड़ पड़ी।

'कला…!' केवल एक शब्द निकल सका मधुकर के मुख से और प्रेम-विह्वल कला ने उसका हाथ पकड़ लिया।

'मुझे बताओ ! तुम ऐसे क्यों हो गये हो, मधुकर ? तुम्हें क्या दुःख है ? तुम्हें क्या कष्ट है ? क्या वेदना है…?'

'कला…! मां अब नहीं रही।' फफककर रो पड़ा मधुकर, कला की हथेलियों में अपना मुंह छिपाकर।

'मधुकर…! जिसने आज से पहले सैकड़ों बार कला को अपने दैन्य जीवन की करुण बातें बताई थीं, अपने अभाव की मार्मिक बातें कही थीं, अपने दुःख-दर्द की रोमांचकारी कहा-

नियां सुनाई थीं—जो कभी हताश न हुआ था, जिसका स्वर कभी कांपा न था, कभी जिसकी आंखों में आंसू नहीं आये थे, जिसके अधरों की मुस्कान कभी धूमिल नहीं हुई थी—वही मधुकर ! आज निरीह बालक-सा कला के सामने रो पड़ा।

कला को भी कम दुःख न था उसकी मां की मृत्यु का समाचार सुनकर। मधुकर के प्रति अगाध प्रेम ने कला को भी व्यथित कर दिया।

'मां मर गई तो क्या अब दुनिया में तुम्हारे लिए कोई न रहा···?' सिक्त वाणी में बोली कला—'ऐसा सोचकर अपने को अशक्त न बनाओ, मधुकर···।'

'वह प्रेम मुझे अब कहां मिल सकेगा कला ?'

'क्यों नहीं मिलेगा ! तुम्हें प्यार करने वालों की दुनिया में कभी नहीं···!' बोली कला—'कब से यहां बैठे हो ?'

'सुबह से···'

'कुछ खाया-पीया भी नहीं ?'

'नहीं, इच्छा ही नहीं हुई।'

'इच्छा नहीं हुई, अथवा तुमने अपने को विनष्ट करने का संकल्प कर लिया है ? तुम यह नहीं सोचते कि तुम क्या कर रहे हो ? इस तरह गुम-सुम रहने से तो तुम्हारी अवस्था एकदम चिन्तनीय हो जायेगी···।' और हाथ पकड़कर वह बोली—'उठो···चलो···!'

'कहां···?' मधुकर ने पूछा।

'मेरे घर !' कला ने उत्तर दिया।

'मुझे क्या करोगी ले जाकर वहां, कला ?'

'और तुम यहां क्या करोगे बैठे-बैठे···?'

'रोऊंगा···।' भीगी आवाज में बोला मधुकर।

'और हंसना तुम क्यों नहीं चाहते···?'

'हंसी तो मां के साथ चली गई, कला···! अब केवल रोना ही तो शेष रह गया है···।'

कला मधुकर का हाथ पकड़कर घसीटती हुई सड़क पर ले आई। एक टैक्सी की और मधुकर के साथ उस पर जा बैठी।

कला का बंगला क्या था, आधुनिक कारीगरी का नमूना था। नवीनतम साज-सज्जा से पूर्ण था हर एक कमरा।

'यहां बैठो···!' कला ने मधुकर को एक सोफे पर बैठा दिया।

और वह कमरे से बाहर चली गई। थोड़ी ही देर में उत्तम भोजन प्लेट में सजाकर ले आई। मधुकर इनकार करता ही रहा, मगर कला की जिद के आगे उसकी एक न चली।

भोजन कर चुकने पर दोनो ने साथ-साथ कॉफी पी और तब कला ने मधुकर को एक सिगरेट जलाकर दी। पीने लगा मधुकर। कला के स्निग्ध व्यवहार से मधुकर को मानसिक तृप्ति मिली और मिली हार्दिक शान्ति।

कला ने अनुभव किया कि अब मधुकर दुनिया में एकदम अकेला रह गया है। न कोई साथी, न कोई संगी। और बिना एक साथी के मनुष्य का जीवन अव्यवस्थित हो जाता है।

मधुकर को एक साथी की आवश्यकता है, जो उसके अव्यवस्थित जीवन के साथ चिपककर उसे क्रमानुसार कार्य करने को बाध्य करे, जो अपनी सहानुभूति से उसकी आंखों के आंसू सुखा सके, जो उसके तड़पते हुए दिल को अपने कलेजे से लगाकर उसकी पीड़ा हर ले, जो उसके शिथिल शरीर में अपना खून डालकर उसे शक्ति प्रदान करे, जो उसकी उजड़ी हुई दुनिया में, सुख-शान्ति की वर्षा कर हरा-भरा करे।

कला इस सबके लिए तैयार थी। मधुकर के लिए सबकुछ कर सकती है वह ! अपने अरमान-भरे दिल को मधुकर के डगमगाते चरणों पर निछावर कर सकती थी—अपने नयनों की मदिरा मधुकर के शुष्क नेत्रों में भर सकती थी—अपने जीवन का सुख-चैन मधुकर के दुःखी जीवन पर बलिदान कर सकती थी—मगर मधुकर उदासीन था···उदासीन था पहले भी और आज भी।

कला के सिसकते हुए हृदय को कभी उसने प्रोत्साहन नहीं दिया—।

कला के नयनों की मदिरा, सुधा समझकर वह पी गया था और जरा भी मदहोश न हुआ था। उसके यौवन का आवेग उसने बड़ी ही शान्ति और धैर्य से झेला था।

'आज तक हमेशा तुम अपने मन की करते रहे···।' कला बोली—'कभी मेरा कहना न माना, कभी तुमने मेरी बातों पर

ध्यान न दिया, कभी यह नहीं सोचा कि इस कला के दिल में भी तुम्हारे लिए सुरक्षित स्थान है···।'

'कैसा स्थान···?' पूछा मधुकर ने।

'जिसके हृदय में किसी के टूटे दिल की धड़कन सुनने की शक्ति नहीं —जिसकी आंखों में दूसरे के आंसू देखकर विचलित होने का दिल नहीं—उसे कैसे समझाया जा सकता है···?' बोली कला।

'मैं दुखी और अनाथ हूं, कला! मुझ पर व्यंग की बौछार न करो···।'

'तुम अपने को इतना हेय क्यों समझते हो···?' सोफे पर थोड़ी दूर बैठी कला, मधुकर के एकदम पास खिसक आई और बोली—'तुम मेरा एक कहना मानोगे?'

'मन के अनुकूल हुआ तो, मानूंगा।'

'पिताजी का पुनः पत्र आया है···' बोली कला—'उन्होंने मुझे शीघ्र बम्बई पहुंचने की सूचना दी है। तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। यहां रहकर तुम क्या करोगे, सिवा रोने के···' कला ने मधुकर के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया—'तुम मेरे साथ चलो। तुम्हें किसी बात का कष्ट न होने पायेगा। तुम सदैव मेरे साथ रहना। मैं पिताजी से कहकर तुम्हारे योग्य कोई जगह दिला दूंगी···'

सोचने लगा मधुकर कि अब, जब वह मां को भी खोकर दुनिया में बे-घरबार का एकदम अकेला रह गया है, तो उसे क्या करना चाहिए···? जीवन ने उसे अपने यहां रहने की प्रार्थना की थी और आज यह कला अपने साथ ले चलने को उत्सुक है! क्या करे मधुकर, क्या न करे?

जीवन के यहां रहने से वह उसका नौकर कहलायेगा, तो कंचन से विवाह करने की लालसा दुराशामात्र रह जायगी, क्योंकि एक नौकर की क्या हस्ती कि वह मालिक की बहन से विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित करे?

कला के साथ रहने से उसे इन बातों की पूरी सुविधा रहेगी। वह दिल खोलकर कंचन को मांग सकेगा। साथ ही कला ने उसके साथ जो अनगिनत उपकार किये हैं, उनका बदला भी चुक जायेगा।

'क्या सोच रहे हो मधुकर ?' कला ने पूछा।

मधुकर चौंक पड़ा, कला के सुकोमल शरीर का बोझ अपने ऊपर पड़ता देखकर और उसकी गर्म सांस को अपने कपोलों पर अनुभव कर।

'कुछ नहीं...' बोला मधुकर—'यदि तुम मुझे अपने साथ ले चलना चाहती हो तो मैं तैयार हूं...'

'मधुकर...!' और आनन्द-विभोर हो वह उसके कन्धे से लग गई। मधुकर का हृदय एकबारगी सिहर उठा। कला के कठोर वक्ष उसकी बांह चूम रहे थे।

'तो कब चल रही हो तुम...?' पूछा मधुकर ने।

'कल...' सोचती हुई बोली कला।

'अच्छा तो मैं अब चलता हूं—सामान ठीक कर लूं और बुढ़िया दादी से परामर्श भी कर लूं...' मधुकर ने कहा।

'जाओ—मैं कल दस बजे तुम्हारे पास पहुंच जाऊंगी...!' कला ने जाते हुए मधुकर पर मोहक दृष्टि डाली और मोहिनी मन्त्र से मुग्ध व्यक्ति की तरह मधुकर चला गया।

जिस समय वह अपने घर पहुंचा, उस समय दीपक के प्रथम आलोक में सन्ध्या अपना मुख देख चुकी थी। आते ही मधुकर अपना सब सामान एकत्रित करने में जुट गया। बुढ़िया दादी मधुकर को इस प्रकार व्यस्त देखकर आश्चर्यचकित हो उठी।

'यह क्या कर रहे हो मधू...?' पूछा दादी ने।

'सामान इकट्ठा कर रहा हूं, दादी...!' बोला मधुकर।

'किसलिए...?' कलेजा कांप उठा बुढ़िया दादी का।

'कल बम्बई जाऊंगा—नौकरी लग गई है।' कहा मधुकर ने।

'लात मार नौकरी पर, बेटा...!' बुढ़िया बोली—'चल, सब सामान ठीक-से रख दे। मैं तुझे जाने नहीं दूंगी।'

'यहां पड़े-पड़े क्या करूंगा, दादी...?' मधुकर ने कहा—'वहां जाकर कुछ पैसे कमा लूंगा...।'

'पैसे की मेरे पास कमी नहीं।'

'परन्तु पैसे में थोड़ी और वृद्धि हो जाये तो बुरा क्या है... जब कहोगी नौकरी छोड़कर चला आऊंगा और तुम्हारे लिए

एक नवेली बहू भी लेता आऊंगा···।'

'सच···!' बुढ़िया हर्षित होकर बोली—'सच कहता है तू ? बहू लायेगा···? तब साफ-साफ क्यों नहीं कहता कि बहू लाने जा रहा है···।'

बुढ़िया दादी बहू लाने की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हो उठी थी।

'हां दादी, मैं बहू लाने जा रहा हूं···!' हंसकर बोला मधुकर—'एक परी-सी बहू लाऊंगा जो तुम्हारे काम में हाथ बटायेगी, तुम्हारे पैर दबायेगी, परन्तु अपना कान जरा बचाये रखना, क्योंकि मैं कनकौआ बहू लाऊंगा जो तुम्हारे कान उखाड़ेगी।'

बहुत दिनों पर आज मधुकर के चेहरे पर मुस्कान देखकर बुढ़िया फूली न समायी। हंसती हुई बोली—'मेरे कान की फिक्र छोड़ मधु, अपने कान की खैर मना ! कनकौआ बहू आते ही तेरे कान गरम न कर दे···।' और दोनों उन्मुक्त हंसी हंस पड़े।

'हां तो मधू ! कब लौटकर आयेगा बहू लेकर ?' पूछा बुढ़िया ने।

'जल्द ही लौटूंगा, दादी···।'

'बहुत जल्द लौटेगा न···? देख बेटा ! दुनिया में मेरा कोई नहीं है। तेरे ही सहारे हूं। अपनी मां की तरह मुझे भी धोखा मत देना, निर्मोही न बन जाना, मधू !'

'तुम व्यर्थ परेशान होती हो दादी। सच कहता हूं, बहुत जल्द लौटूंगा और तुम्हें रोज एक पत्र लिखा करूंगा।'

'भला रे भला···!' बुढ़िया बोली—'देखना है कि वहां जाकर कितने पत्र लिखता है ? बहू तुझ जैसा सुन्दर वर पाकर, तुझे आंचल में कैद कर लेगी, तब रोज पत्र लिखने की बात एकदम भूल जाएगा।' मधुकर हंसकर रह गया। वह भोली दादी को भुलावा दे रहा था, अन्यथा वह उसे जाने की अनुमति कदापि न देती।

दूसरे दिन मधुकर कला के साथ बम्बई रवाना हो गया। साथ में दिनेश भी था—वही दिनेश, जो मधुकर को पहले से ही घृणा की दृष्टि से देखता आ रहा था। कला उसे अपने

पिता की आज्ञा से साथ लिए जा रही थी।

मधुकर के चले जाने के बाद, शाम को ही जीवन का पहला पत्र आया। पोस्टमैन ने दरवाजा बन्द देख, किवाड़ों की दरार से पत्र अन्दर डाल दिया। दूसरा पत्र आया, उसकी भी वही दशा हुई। जीवन का तीसरा पत्र, कंचन का अनुनय-भरा पत्र---सब उस अंधेरी कोठरी में सड़-गल रहे थे और मधुकर था हजारों मील दूर---बम्बई में।

□ □

कंचनमाला अपनी डायरी लिख रही थी, कांपती हुई कलम धीरे-धीरे कागज पर दौड़ रही थी। कंचन का मुख वेदनाछन्न था। आंखें शुष्क हो चली थीं, जैसे आंसुओं का अगाध सागर व्यथानल से सूख गया हो।

यों लिख रही थी वह---आज तीन महीने हो गये उस निर्मोही को गये, मगर उस निर्दयी ने एक पत्र भी नहीं भेजा, खुद आना तो दूर रहा।

वे अधरों के संघर्षण आज स्वप्न की बातें प्रतीत होती हैं। सोचकर आज भी हृदय में जैसे कोई गुदगुदी भर देता है। उन्माद-सा छा जाता है मुझ पर, बेहाल हो उठती हूं—मगर उस निर्मोही का ध्यान आते ही नेत्र भर आते हैं, व्यथाएं उमड़ पड़ती हैं पीड़ा द्विगुणित हो जाती है कलेजा अगम वेदना से भर उठता है—हृदय में पुरुषों के प्रति अपार घृणा उत्पन्न हो जाती है···मैं डर रही हूं कि कहीं यह क्षणिक घृणा, अन्त में मुझे पुरुषों से बदला लेने पर उतारू न कर दे? मैं देख रही हूं कि मेरी यह घृणा जो एक दिन सूक्ष्म रूप से अंकुरित हुई थी, आज एक छोटे पौधे का रूप धारण कर बैठी है।

आज से पांच महीने पहले की घटना भला कभी भूल सकती हूं मैं? वहीं से तो मेरे पतन की दुनिया का इतिहास प्रारम्भ होता है।

यौवन का आवेग जैसे शराब का प्याला है। मदहोश बना देता है मानव को। तभी तो जब पहले-पहल मधुकर को देखा, तो ऐसा लगा जैसे पूरी बोतल गले के नीचे उतार ली हो मैंने, और मदिरा की कालिमा आंखों में लालिमा बनकर उतर आई हो।

दोनों ओर से नशा चढ़ चुका था। दोनों, एक-दूसरे से मिलने को व्यग्र थे। हृदय में वासना हिलोरें ले रही थी।

वासना ...! जी हां! आजकल के युवक-युवतियों के उबलते प्रेम में, मदभरी आंखों में, वासना ही तो निहित रहती है—आज मैं अपना सब-कुछ गंवाकर, सब-कुछ लुटाकर, तब यह समझ पाई हूं।

वह अंधेरी काली रात, आकाश पर छाये हुए मदमत्त बादल और उनके आलिंगन को बेताब, चीखती-चिल्लाती बिजली—

डर के मारे मेरा कलेजा कांप उठा था, हृदय में एक मधुर टीस-सी उमड़ पड़ी थी, वर्षा की बूंदों का मादक टप-टप स्वर सुनकर।

डर ने मुझे मधुकर के पास जाने को बाध्य किया और टीस ने वासना को प्रोत्साहन दिया और तब उस निर्मोही की चलती-फिरती बातों ने मुझे वासनासिक्त कर दिया और मैं अपना स्वस्व लुटा बैठी। क्षणिक भावावेग में पड़कर अपना अंग-प्रत्यंग रख दिया उस निर्मोही निष्ठुर के आगे।

हां! अब तो उसे निर्मोही ही कहना उपयुक्त होगा। लुटेरे ने मेरा सब-कुछ लूट लिया और अब मुझे जंजाल के बीच छोड़कर न जाने कहां जा बसा? कई पत्र लिख चुकी हूं, परन्तु उत्तर किसी का भी नहीं आया। वासना के अन्धे पुतले को तो केवल सौन्दर्य की चाह थी—केवल अछूती कली तोड़ने की अभिलाषा थी।

गर्भ में उसका पाप पल रहा है। उसकी एक-एक हरकत, उसका हिलना-डुलना मैं अनुभव कर सकती हूं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे पेट में हजारों मन का बोझ आ पड़ा है। स्वास्थ्य भी दिनों-दिन गिरता जा रहा है। उल्टी भी कभी-कभी आ जाती है। पेट बीच से उभर आया है...और एक दिन तो मैं सन्न-सी खड़ी रह गई, यह देखकर कि भैया एकटक मेरे उभरे हुए पेट की ओर देख रहे हैं। मगर मेरा डर व्यर्थ था। भैया की दृष्टि पेट पर से हटकर मेरी आंखों के चारों ओर छाये गड्ढे पर आ पड़ी।

रुआंसे-से होकर बोले वे—'कैसी हुई जा रही है तू,

कंचन...!'

'कुछ भी तो नहीं भैया !'

मैं अब भी अपने प्यारे भैया से छल कर रही थी, यद्यपि वे यह अनुमान लगा चुके थे कि मैं मधुकर के प्रति आकर्षित हूं---परन्तु वे क्या जानते थे कि उनकी लाड़ली बहन एक निर्मोही के फेर में पड़कर उनके मुंह पर काला धब्बा लगा चुकी है—और होने जा रही है एक कोमल बच्चे की मां। कितनी विषम परिस्थिति है मेरी !

एक दिन भैया जल्दी ही कारखाने से लौट आये। आते ही बोले—'कंचन ! मेरा सूटकेस जल्दी से ठीक कर दे।'...

'क्या करोगे सूटकेस, भैया ?'... पूछा मैंने।

'बाहर जाना है...।'

'कहां ? मुझे बताओ, कहां जाओगे तुम...?' मुझे भैया के बाहर जाने की बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ था। मैं जानती थी कि भैया का जीवन बहुत व्यस्त रहता है और दो-चार दिन भी बाहर रहने से दस-बीस हजार का नुकसान हो सकता है।

भैया का काम सम्हालने वाला कोई था भी नहीं। नीम-गुमाश्तों पर इतना बड़ा विश्वास नहीं किया जा सकता था।

वह भैया, जिसे दम मारने का भी अवकाश नहीं मिलता, आज कारखाना बन्द करके बाहर जाना चाहता है।

'आखिर कहां ? मैंने पुनः पूछा।

'कानपुर जाने का विचार है। मधुकर के पास !' भैया बोले।

'मधुकर के पास ! उस छलिया के पास, उस निर्दयी, बेदर्द के पास, उस कपटी निर्मोही के पास !'

'मेरा हृदय न जाने कैसी घृणा से भर उठा...मधुकर ! जिसकी कोई हस्ती नहीं, जिसकी श्रेणी के सैकड़ों हमारे यहां गुलाम हैं, जिसको हम सोने से तौलकर खरीद सकते हैं—उसके पास भैया जायं ! उफ् ! मेरी नादानी ने क्या से क्या कर डाला।

'भैया उसके पास जाएंगे, उससे प्रार्थना करेंगे—'मधुकर चलो मेरी बहन मर रही है ! उसे बचा लो—मैं तुम्हारे पैरों

पड़ता हूं…।'

मेरे नेत्रों के सामने वह चित्र घूम गया। भैया की टोपी मधुकर के पैरों पर पड़ी है और मधुकर ने उसे ठुकरा दिया है। कह रहा है—'चले जाओ यहां से जीवन…तुम्हारी बहन मर रही है तो किसी डाक्टर के पास जाओ। मेरे पास क्यों आये हो…?'

एक निर्मोही जिसने पत्रों तक का उत्तर नहीं दिया, उससे और क्या आशा की जा सकती है। मेरा हृदय करुण चीत्कार से भर उठा।

नहीं, मैं नहीं जाने दूंगी भैया को उसके पास। मैं भैया की अवहेलना, भैया की आन पर कलंक नहीं लगने दूंगी।

'खड़ी-खड़ी क्या सोच रही है तू…?' भैया ने कहा—'जा जल्दी से सूटकेस में कपड़े रख दे। मैं बग्घी तैयार रखने को कह आया हूं। ट्रेन छूटने में केवल आधा घण्टा रह गया है…।'

मैंने देखा भैया की आंखों में पानी उमड़ आया है।

'नहीं भैया! कानपुर जाने की आवश्यकता नहीं…।' मैंने दृढ़ स्वर में कहा।

भैया मेरा स्वर सुनकर चौंक पड़े। बोले—'क्या हो गया है तुझे?'

'कुछ भी तो नहीं…।' मैंने कहा।

'तू मधुकर को…।'

'मैं मधुकर से घृणा करती हूं…।' एकाएक मेरे मुंह से निकल गया। मैं अपना आवेग छिपाकर वहां से भागी और अपने कमरे मैं आकर पलंग पर गिर पड़ी।

हृदय की व्यथा, करुण स्वर बनकर मुख से निकल पड़ी। मैं रोई और जी भरकर रोई!

मैंने यह क्या कह दिया? क्या मैं वास्तव में मधुकर से घृणा करती हूं…? नहीं! मधुकर ज्वाला बनकर मेरे हृदय में बैठा मुझे जला रहा है घृणा है मुझे केवल मधुकर के निर्मोही स्वभाव पर। मधुकर को मैं भूल नहीं सकती।

मैं पलंग पर पड़ी तब तक सिसकती रही, जब तक कि भैया ने आकर मेरी बांह पकड़कर उठाया नहीं।

'कहती है मधुकर से घृणा करती हूं!' बोले भैया।

'मैं सच कहती हूं, भैया !'

'तब रोती क्यों है···?' पूछा भैया ने।

'आंखों में उमड़ते आंसुओं को कैसे रोकूं, भैया ?'

'आंखें पोंछ ले···।' भैया व्यथित स्वर में बोले—'चल आज विजय टाकीज में 'मुजरिम' आया है दिखा लाऊं।'

'मैं सिनेमा देखने नहीं जाऊंगी।'

'जिद करेगी कंचन तो थप्पड़ जड़ दूंगा। मालूम होता है तू मुझे रुलाकर ही दम लेगी···।'

और मैंने दिल मजबूत कर उनकी ओर देखा—देखा उस भैया को—जो मेरे दुःख से दुःखी होकर आंखें पोंछ रहा था। भीम-सा मेरा भैया सचमु रो रहा था। मैंने उठकर भैया का हाथ पकड़ लिया। बोली—'मैं सिनेमा चलूंगी भैया···।'

भैया के साथ मैं सिनेमा गई। खेल बहुत सुन्दर था, परन्तु मेरा व्यथित हृदय तनिक भी शान्त न हुआ।

आज भी तड़प रही हूं उस निर्मोही के आने की आस लगाए। अब तो केवल दो-तीन महीनों की देर है, जबकि एक नवजात शिशु मेरी गोद में करुण-क्रन्दन कर उठेगा, सारी दुनिया मुझ पर थूकेगी और मेरे प्यारे भैया का उज्ज्वल मुख अपमान से काला हो जाएगा। हे भगवान् !

—कंचनमाला



मधुकर आश्चर्यचकित हो उठा। सागर बैंक लिमिटेड की विशाल बिल्डिंग देखकर, जो सर फिरोजशाह मेहता रोड पर आसमान चूमती खड़ी थी।

बम्बई की चहल-पहल देखकर पहले ही मधुकर अचम्भे में पड़ गया था। अब हैरान था, उस बिल्डिंग की ऊंचाई देखकर। पांचों मंजिल में उसी बैंक का कारबार होता है। लगभग १०० क्लर्क, ५० टाइपिस्ट गर्ल्स, १५ चपरासी और चार दरबान हैं।

कला को देखकर लम्बे-तगड़े मुगली दरबान ने झुककर सलाम किया। कला ने थोड़ा सिर झुकाकर उसका

सलाम स्वीकार किया और मधुकर का हाथ पकड़े लिफ्ट पर चढ़ गई। लिफ्टमैन ने स्विच दबाया और सर्र से लिफ्ट पहली मंजिल पर जा पहुंची। कला मधुकर को पहली मंजिल का कार्यक्रम बताने लगी। जो भी कला को देखता, झुककर अभिवादन करता। मधुकर अवाक् था।

पहली मंजिल पर करेण्ट एकाउण्ट का कारबार था। वहां से वे दूसरी मंजिल पर पहुंचे। यहां सेविंग बैंक एकाउण्ट का कारबार होता था। तीसरी मंजिल में फिक्स्ड डिपॉजिट एकाउण्ट डिपार्टमेण्ट था। चौथी मंजिल पर बैंक का हैड ऑफिस था और पांचवीं पर मैनेजिंग डाइरेक्टर आदि के कार्यालय थे।

पांचवीं मंजिल पर पहुंचकर एक कुर्सी की ओर इशारा कर कला बोली—'तुम यहीं बैठो, मधुकर ! मैं पिताजी से मिलकर उन्हें तुम्हारे आने की सूचना दे दूं…।'

मधुकर ने देखा कि एक लाइन में चार कमरे हैं। सभी के दरवाजों पर पीतल के चमकते पीतल के बोर्ड लगे हैं। सभी दरवाजों पर स्प्रिंगदार आधे किवाड़ हैं। मधुकर कुर्सी पर बैठ गया और कला उस दरवाजे की ओर बढ़ी, जिसके ऊपर पीतल की तख्ती पर लिखा हुआ था—मैनेजिंग प्रोप्राइटर राय साहब सेठ बिहारीलाल।

— राय साहब सेठ बिहारीलाल का पर्सनल असिस्टेन्ट अभी-अभी कुछ कागजात उनकी मेज पर रख गया था और वे उन पर हस्ताक्षर कर रहे थे कि आ पहुंची कला। अपने पिता को व्यस्त देखकर वह एक खाली कुर्सी पर बैठ गई। सेठजी पचास वर्ष की अवस्था के व्यक्ति थे। दीर्घाकार गौर-वर्ण की आकृति थी उनकी। चेहरे पर की रोबीली मूंछें उनके कर्मठ व्यक्तित्व को प्रकट करती थीं। विलायती रेशमी सूट पहने बैठे थे वे कुर्सी पर।

दस्तखत कर चुकने पर सेठ बिहारीलाल ने सोने के फाउन्टेन पेन को मेज पर रख दिया और पाइप जलाकर पीते हुए बोले—'बंगले पर से आ रही हो कला…? मधुकर कहां हैं…?'

'वे बाहर बैठे हैं…।' कला बोली—'यहां लाने से पहले

आपसे अनुमति लेना आवश्यक समझा मैंने…।'

'ठीक है…।' सेठजी बोले—'कल तो तुम लोग ऐसे समय में आये कि मधुकर से कुछ बात भी न कर सका। मेरा क्लब जाना जरूरी था।'

'कल रात में आप क्लब से कब लौटे, पिताजी ?'

'आधी रात बीत चुकी थी और तुम लोग सो गये थे…।' सेठजी ने कहा—'हां तो मैंने दिनेश को करेण्ट एकाउन्ट डिपार्टमेण्ट में एक क्लर्क की जगह दे दी है। वह आज से काम करने लगा। अंधेरी में उसने अपने लिए एक छोटा-सा मकान ले लिया है…।'

'अंधेरी में…?' कला बोली—'इतनी दूर !'

'क्या हर्ज है…।' सेठजी ने कहा—'बी० बी० एण्ड सी० आई० का एक सीजन टिकट खरीद लेगा और चर्चगेट उतरकर, दो मिनट में यहां आ पहुंचेगा।'

'मधुकर के रहने के लिए तो मैंने चर्नीरोड पर एक फ्लैट ले लिया है। अपने बंगले से थोड़ी ही दूर है। लगभग चार फर्लांग…।'

सेठ बिहारीलाल का बंगला मेरीन ड्राइव पर समुद्र के एकदम किनारे था।

'ठीक किया…।' बोले सेठ बिहारीलाल—'हां तो मधुकर तुम्हारा सहपाठी है…? तुम्हारे साथ बी० ए० किया है, उसने ?'

'जी हां !'

'सूरत-शक्ल से तो लड़का बुद्धिमान मालूम होता है…।' सेठजी ने कहा—'उसे बुलाओ, दो-चार बातें पूछ लूं…।'

कला बाहर जाकर मधुकर को बुला लाई। मधुकर ने सेठजी को सादर अभिवादन किया और चुपचाप खड़ा रहा।

'उस कुर्सी पर बैठ सकते हो…।' गम्भीर स्वर में सेठजी ने मधुकर को आज्ञा दी और मधुकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

'कला के सहपाठी रहे हो तुम ?'

'यस सर…!' अदब से वह बोला।

'तुम दोनों में गहरी दोस्ती है, क्यों…?' सेठजी के गम्भीर चेहरे पर मुस्कराहट की हलकी आभा झलक कर फिर शून्य में

विलीन हो गई।

'……' कला के गाल, न जाने क्यों गुलाबी हो गये।

'तुम्हारी प्रशंसा अकसर कला के पत्रों में पढ़ा करता था…।' बोले सेठजी—'तुम्हें देखने की बहुत लालसा थी, यह सोचकर कि देखें वह युवक कैसा है, जिसके ऊपर कला की इतनी प्रबल सहानुभूति है। आज तुम्हें देखकर बहुत खुशी हुई। तुम तो बहुत सीधे-सादे लड़के हो। बहुत पसन्द आये तुम मुझे…।'

'धन्यवाद…!' मधुकर ने कहा। उसने अनुभव किया कि राय बहादुर सेठ बिहारीलाल के गम्भीर चेहरे के पीछे एक कोमल हृदय भी है।

'देखो मधुकर…।' सेठजी कुर्सी का ढासना लगाकर बोले—'कल यहां के मैनेजिंग डाइरेक्टर मिस्टर टामसन का तबादला पूना ब्रांच में मैनेजर के पद पर हो रहा है। कला उनका काम सम्हालेगी। कला को कुछ प्रीवियस एक्सपीरियन्स भी है, सो वह अपना काम बखूबी सम्हाल लेगी। मगर तुम इस काम में नये हो, अतः तुम्हें कला के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करना होगा—बोलो, क्या कहते हो, तुम…?'

'मुझे स्वीकार है…।' मधुकर बोला।

'याद रखो! प्राइवेट सेक्रेटरी का पद भी कम महत्व का नहीं है…।' सेठजी बोले—'बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियां रहेंगी तुम्हारे सिर पर और तुम्हें योग्यतापूर्वक काम सम्हालना पड़ेगा…।'

'जो कुछ उत्तरदायित्व मुझे सौंपा जायगा, उसे प्राणपण से पूरा करने की चेष्टा करूंगा…।'

'शाबाश…! अगर तुम योग्य प्रमाणित हुए, तो मैं तुम्हारे उत्थान का वचन देता हूं…।' पाइप का कश खींचते हुए बोले सेठजी।

'आपकी इस कृपा के लिए मैं आभारी हूं…।'

'कला को धन्यवाद दो, जिसकी सिफारिश से तुम्हें प्राइवेट सेक्रेटरी का पद मिल रहा है, अन्यथा तुम्हें भी दिनेशचन्द्र की तरह कोई मामूली क्लर्क की जगह दी जाती…।' बोले सेठजी।

और मधुकर ने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि कला पर डाली तो मुस्करा पड़ी कला।

सेठजी ने कॉलिंग बेल पर हाथ रखा। तुरन्त ही चपरासी आकर अदब के साथ खड़ा हो गया—'मिस्टर टामसन को बुलाओ?'

चपरासी बाहर चला गया। थोड़ी ही देर बाद वहां एक हसीन एंग्लो इंडियन युवती ने प्रवेश किया। अठारह साल की उमर थी उसकी। गालों पर खून दौड़ रहा था। कागज जैसे सफेद चमड़े पर कहीं शिकन न थीं, होंठों की मादकता लिपस्टिक ने द्विगुणित कर दी थी। पग-पग पर शरीर नागिन-सा लहरा उठता था।

आते ही रिबेला ने मधुकर पर एक चुभती दृष्टि डाली और तब सेठजी और कला को अभिवादन कर वह एक कुर्सी पर बैठ गई।

मधुकर रिबेला की ओर देखकर ठगा-सा खड़ा रह गया था। यौवन-मद से इतराती हुई उसकी आंखों में शराब का समुद्र लहरा रहा था।

'मिस्टर टामसन कहां हैं, मिस रिबेला···?' पूछा सेठजी ने।

'मिस्टर टामसन अभी आफ्टरनून-टी पर बैठे हैं, सर···!' रिबेला ने कहा—'उन्होंने मुझे आपकी खिदमत में भेजा है···।'

'ऑल राइट···!' बोले सेठ बिहारीलाल—'तुम्हें मालूम है कि कल मिस्टर टामसन और तुम्हारा तबादला पूना ब्रांच के लिए हो रहा है। अतः मिस्टर टामसन को बोलो कि वे अपना चार्ज कला कुमारी को दे दें और तुम अपना चार्ज मिस्टर मधुकर को···।'

'थैंक्यू सर···!' कहकर कला और मधुकर से रिबेला बोली—'आप लोग मेरे साथ आने की तकलीफ करें।'

कला और मधुकर रिबेला के पीछे चले। तीन कमरों के बाद ही मैनेजिंग डायरेक्टर का आफिस था। रिबेला ने इज्जत के साथ कला और मधुकर को बैठाया ही था कि मिस्टर टामसन रिफ्रेशमेण्ट रूम से निकलकर वहां आ पहुंचे। रिबेला ने

उन्हें सेठजी की आज्ञा कह सुनाई।

मिस्टर टामसन कला को कागज-पत्र समझाने लगे और रिबेला मधुकर को। बातचीत से मधुकर को ज्ञात हुआ कि जिस तरह रिबेला की मुखाकृति मादक है, उसी तरह उसका स्वर भी।

'समझ गये आप?' सब-कुछ समझा चुकने पर रिबेला ने मधुकर की ओर हलाहल भरे नयनों से देखा।

'जी हां। धन्यवाद···!' मधुकर बोला—'आपको बहुत तकलीफ हुई?'

'तकलीफ की बात कहते हैं···!' रिबेला मीठे स्वर में धीरे मे बोली—'आप जैसे आदमी के साथ अगर मुझे काम करना पड़े तो मैं रात भर न थकूं···।'

'थैंक्यू···!' मधुकर ने कहा।

'आपका साथ मुझे बहुत पसन्द है···।' रिबेला ने मधुकर के हाथों पर हाथ रखकर कहा—'मगर अफसोस, कल मैं पूना जा रही हू। क्या आप कभी-कभी मुझे पत्र लिखने का कष्ट करेंगे?'

'अवश्य···! इसमें कष्ट की क्या बात है?' मधुकर बोला।

रिबेला ने पॉकेट से सिगरेट-केस निकाल कर कहा—'सिगरेट लीजिए।'

'धन्यवाद···।' कहकर मधुकर ने सिगरेट-केस से एक सिगरेट निकाल लिया। दोनों सिगरेट जलाकर पीने लगे।

शाम को जब कला और मधुकर, सागर बैंक लिमिटेड से बाहर आये तो मिल गया दिनेश। मधुकर को देखकर उसने घृणापूर्वक मुंह सिकोड़ लिया और तब कला की ओर बढ़ा।

'तुमने तो अपने पिताजी से मेरी खूब सिफारिश की, कला···?' दिनेश ने व्यंग किया—'आखिर एक मामूली क्लर्क की जगह दिला ही दी···।'

'पिताजी ने जो उचित समझा, किया—मैं क्या कर सकती थी?

'हां, तुम मेरे लिये क्या कर सकती थीं···? मधुकर को घूरता हुआ बोला दिनेश—'तुम जो कर सकती थीं, केवल मधुकर के

लिये। तभी तो इसे प्राइवेट सेक्रेटरी की जगह दिला दी…।'

'मुझे अफसोस है मिस्टर दिनेश, कि तुम्हें मुझसे ईर्ष्या करने का अवसर मिला।' मधुकर बोला।

'तुम चुप रहो मधुकर! मैं अन्धा नहीं, सब कुछ समझता हूं, मेरे रास्ते पर तुम कांटे बिछा रहे हो।' कहकर दिनेश ने मधुकर को जलती आंखों से देखा और चला गया।

ईर्ष्यालु दिनेश ने यही धारणा बना ली थी, कि मधुकर ने ही कला को उसकी सिफारिश करने के लिए मना कर दिया है,

मधुकर का जीवन अत्यन्त व्यस्त था। प्रातःकाल उठता, शौचादि से निवृत्त होकर मॉर्निंग पेपर देखने लगता और साथ ही साथ चाय भी पीता जाता। तब तक नौ बज जाते। झटपट उठकर स्नान करता और भोजन करके आफिस रवाना हो जाता। सागर बैंक लिमिटेड का आफिस ठीक दस बजे खुलता था। आफिस में १० बजे से ५ बजे तक उसे दम मारने की फुर्सत न रहती, क्योंकि अधिकांशतः कला का काम भी उसे करना पड़ता था। उसका मासिक वेतन ढाई सौ था।

कला की सहानुभूति में निरन्तर वृद्धि होती गई। शाम दोनों आफिस से साथ-साथ निकलते और वेंगेट स्टेशन पर आकर स्टेशन रेस्ट्रां में चाय पीते और तब गाड़ी पर सवार होकर कभी दादर, कभी अंधेरी, कभी अजन्ता आदि स्थानों में घूमते। सिनेमा तो लगभग प्रतिदिन साथ देखते थे। इस प्रकार चहल-पहल में मधुकर के दिन व्यतीत हो रहे थे। धीरे-धीरे अपनी मां की याद भूलता गया वह और उस बुढ़िया दादी की प्रार्थना तो वह एकदम ही विस्मृत कर बैठा था।

दिनेश! जिसके रग-रग में मधुकर के प्रति घृणा भरी हुई थी, जो यह कदापि सहन नहीं कर सकता था कि उस जैसे आत्मीय के होते हुए कला मधुकर जैसे हीन व्यक्ति के लिए पागल बनी फिरती रहे।

वह जल-भुनकर खाक हो रहा था। कला को उसने अपनी बनाने का स्वप्न देखा था। परन्तु मधुकर उसके रास्ते का कांटा, मार्ग का रोड़ा बन गया था। दिनेश की नसें फड़क उठीं। स्वतः बड़बड़ाया—वह इस कांटे को नष्ट कर देगा, मार्ग अवरुद्ध करने वाले रोड़े को पीसकर धूल में मिला

देगा।

मधुकर अनभिज्ञ था। उसे इन बातों के सोचने का अवकाश ही न था। वह अपना काम अत्यन्त ईमानदारी के साथ लगनपूर्वक कर रहा था, क्योंकि रायसाहब सेठ बिहारीलाल ने उसकी पदोन्नति के लिए वचन दिया था। वह चाहता था कि वह अपनी विद्या बुद्धि द्वारा अपनी लगन द्वारा, यह सिद्ध कर दे कि वह वास्तव में उन्नति पाने का अधिकार रखता है।

मधुकर का कार्य राय साहब सेठ बिहारीलाल से छिपा न था। वे बहुत प्रसन्न थे मधुकर जैसा ईमानदार कर्मचारी पाकर। वे उसकी उन्नति के लिए हृदय से इच्छुक थे। यही कारण था कि उन्होंने कला के मधुकर के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने पर कभी रोक नहीं लगाई।

उस दिन—अपने आफिस में मेज के पास बैठी कला, मधुकर द्वारा दिये गये कुछ कागजात देख रही थी। मधुकर खड़ा था।

'यह क्या है ?' कला ने पूछा।

'तुम मुझे 'आप' कब से कहने लगे···?' आरक्त होंठों पर मदिर मुस्कान लाकर कला ने पूछा।

'जब से आप मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठीं···।

'तुम खड़े क्यों हो···? बैठ क्यों नहीं जाते···?'

'आपने बैठने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए···।' होंठों में मुस्कराता हुआ मधुकर कुर्सी पर बैठ गया।

'मधुकर ! हमारी तुम्हारी घनिष्ठता, क्या मेरे इस पद में बाधक बन सकती है ? हम तुम तो वही रहेंगे जो पहले थे···। कला बोली।

'जी नहीं···!' मधुकर ने कहा—'आफिस में आप मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हैं और मैं प्राइवेट सेक्रेटरी के—इसलिए मुझे आपका सम्मान करना आवश्यक है···।'

'शाबाश···!' कहते हुए आ पहुंचे सेठ बिहारीलाल। मधुकर और कला उठकर खड़े हो गये।

'बैठो ···!' सेठजी स्वयं एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले—'बहुत प्यारी-प्यारी बातें करते हो तुम लोग···मधुकर ! तुमने खूब जवाब दिया, बेटा···!'

'आप तो बस इन्हीं की तारीफ करते हैं, पिताजी···।' बोली कला।

'तुम्हारी भी तारीफ करता हूं कला जो तुमने मेरे लिए ऐसा होनहार बेटा खोज निकाला! देखता हूं कि, तुम तो केवल कुर्सी पर बैठी रहती हो और सारा कार्य यह करता है···।'

'भला मैंने कब किसी का हाथ पकड़ रखा है?' मधुकर कला की ओर देखकर बोला।

'ठीक से काम करो कला···!' बोले सेठजी—'अन्यथा मुझे बाध्य होकर मधुकर को मैनेजिंग डाइरेक्टर बनाना पड़ेगा और तुम्हें उसका प्राइवेट सेक्रेटरी···!'

'तो बना दीजिये न! रोकता कौन है, आज ही बना दीजिये।' कला ने तुनककर कहा।

'मैं तुम्हें एक सप्ताह का समय देता हूं।' और मुस्कराते हुए वे उठकर कमरे से बाहर चले गये।

'क्या ही अच्छा होता कि मैं प्राइवेट सिक्रेटरी होती···।' कला धीरे से बोली।

'क्यों···?'

'तब हमारी तुम्हारी घनिष्ठता तो न टूटती···इस पद से मैं बाज आई। 'तुम' से 'आप' बनना मुझे पसन्द नहीं···।' कहकर हंस पड़ी कला।

'कला···!' मधुकर कला की कुर्सी की बांह पर आकर बैठ गया।

'वाह···!' नाटकीय अभिनय करती हुई कला बोली—'जरा तमीज से बोलो और ठीक से बैठो—क्या तुम नहीं जानते कि···।'

'जानता हूं, तुम्हें बताने की जरूरत नहीं···।

'क्या जानते हो?' कला ने पूछा।

'यही कि मुझे कत्ल किया गया है···।' मधुकर मुस्कराता हुआ बोला।

'कत्ल···?' कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करती हुई कला बोली—'अच्छा तो न्यायाधीश तुमसे कुछ प्रश्न करेंगे, जबाब दो तुम?'

देगा।

मधुकर अनभिज्ञ था। उसे इन बातों के सोचने का अवकाश ही न था। वह अपना काम अत्यन्त ईमानदारी के साथ लगनपूर्वक कर रहा था, क्योंकि रायसाहब सेठ बिहारीलाल ने उसकी पदोन्नति के लिए वचन दिया था। वह चाहता था कि वह अपनी विद्या बुद्धि द्वारा अपनी लगन द्वारा, यह सिद्ध कर दे कि वह वास्तव में उन्नति पाने का अधिकार रखता है।

मधुकर का कार्य राय साहब सेठ बिहारीलाल से छिपा न था। वे बहुत प्रसन्न थे मधुकर जैसा ईमानदार कर्मचारी पाकर। वे उसकी उन्नति के लिए हृदय से इच्छुक थे। यही कारण था कि उन्होंने कला के मधुकर के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करने पर कभी रोक नहीं लगाई।

उस दिन—अपने आफिस में मेज के पास बैठी कला, मधुकर द्वारा दिये गये कुछ कागजात देख रही थी। मधुकर खड़ा था।

'यह क्या है ?' कला ने पूछा।

'तुम मुझे 'आप' कब से कहने लगे···?' आरक्त होंठों पर मदिर मुस्कान लाकर कला ने पूछा।

'जब से आप मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठीं···।

'तुम खड़े क्यों हो···? बैठ क्यों नहीं जाते···?'

'आपने बैठने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए···।' होंठों में मुस्कराता हुआ मधुकर कुर्सी पर बैठ गया।

'मधुकर ! हमारी तुम्हारी घनिष्ठता, क्या मेरे इस पद में बाधक बन सकती है ? हम तुम तो वही रहेंगे जो पहले थे···। कला बोली।

'जी नहीं···!' मधुकर ने कहा—'आफिस में आप मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हैं और मैं प्राइवेट सेक्रेटरी के—इसलिए मुझे आपका सम्मान करना आवश्यक है···।'

'शाबाश···!' कहते हुए आ पहुंचे सेठ बिहारीलाल। मधुकर और कला उठकर खड़े हो गये।

'बैठो···!' सेठजी स्वयं एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले—'बहुत प्यारी-प्यारी बातें करते हो तुम लोग···मधुकर ! तुमने खूब जवाब दिया, बटा···!'

'आप तो बस इन्हीं की तारीफ करते हैं, पिताजी…।' बोली कला।

'तुम्हारी भी तारीफ करता हूं कला जो तुमने मेरे लिए ऐसा होनहार बेटा खोज निकाला! देखता हूं कि, तुम तो केवल कुर्सी पर बैठी रहती हो और सारा कार्य यह करता है…।'

'भला मैंने कब किसी का हाथ पकड़ रखा है?' मधुकर कला की ओर देखकर बोला।

'ठीक से काम करो कला…!' बोले सेठजी—'अन्यथा मुझे बाध्य होकर मधुकर को मैनेजिंग डाइरेक्टर बनाना पड़ेगा और तुम्हें उसका प्राइवेट सेक्रेटरी…!'

'तो बना दीजिये न! रोकता कौन है, आज ही बना दीजिये।' कला ने तुनककर कहा।

'मैं तुम्हें एक सप्ताह का समय देता हूं।' और मुस्कराते हुए वे उठकर कमरे से बाहर चले गये।

'क्या ही अच्छा होता कि मैं प्राइवेट सिक्रेटरी होती…।' कला धीरे से बोली।

'क्यों…?'

'तब हमारी तुम्हारी घनिष्ठता तो न टूटती…इस पद से मैं बाज आई। 'तुम' से 'आप' बनना मुझे पसन्द नहीं…।' कहकर हंस पड़ी कला।

'कला…!' मधुकर कला की कुर्सी की बांह पर आकर बैठ गया।

'वाह…!' नाटकीय अभिनय करती हुई कला बोली—'जरा तमीज से बोलो और ठीक से बैठो—क्या तुम नहीं जानते कि…।'

'जानता हूं, तुम्हें बताने की जरूरत नहीं…।

'क्या जानते हो?' कला ने पूछा।

'यही कि मुझे कत्ल किया गया है…।' मधुकर मुस्कराता हुआ बोला।

'कत्ल…?' कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करती हुई कला बोली—'अच्छा तो न्यायाधीश तुमसे कुछ प्रश्न करेंगे, जबाब दो तुम?'

'अवश्य दूंगा !'

'तुम्हें कत्ल किया गया है ?'

'जी हां···।'

'तुम ऊपर वाले के यहां चले गए हो ?'

'जी हां।'

'तो बोलते कैसे हो···?' पूछा कला ने।

'मरकर बोल रहा हूं 'हुजूर···!'

'मरकर बोल रहे हो···? क्या भूत हो तुम ?'

'जी नहीं—प्रेमी···!'

'क्या मतलब है तुम्हारा ?'

'मेरा मतलब है सरकार ! कि प्रेमी मरकर बोलते हैं···।'

'अच्छा···!' कला बोली—'तो तुम प्रेमी हो···?'

'आपका ख्याल दुरुस्त है, हुजूर !'

'तुम्हें किसने कत्ल किया ?'

'किसी की आंखों ने···।'

'हुजूर फैसला इरशाद फरमायें···!' मधुकर ने कला की तन्मयता भंग की—'गुलाम फैसले का मुन्तजिर है !'

'फैसला यह है कि जिसकी आंखों ने तुम्हें कत्ल किया है, उसे आजन्म कारागार का दण्ड दिया जाता है। तुम उसे अपने नयन-कारागार में आजीवन बन्दी बनाये रखना, समझे···!' कला ने कहा।

'जो आज्ञा हुजूर···!' और दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

'फैसला तो खूब किया तुमने···?' मधुकर ने कहा।

'और प्रश्न भी तो तुमने खूब पूछा था···।' कला बोली—'क्या पूछ सकती हूं किन आंखों ने तुम्हें कत्ल किया है···?'

'क्या करोगी पूछकर···?' कहा मधुकर ने—'कत्ल करने वाली आंखों ने तो फ़ैसला सुना ही दिया···।'

'वे कातिल नहीं, मासूम हैं···।' बोली कला।

तभी, कहीं पास ही ग्रामोफोन बज उठा।

मासूम नजर का भोलापन, ललचा के लुभाना क्या जाने ?

दिल आप निशाना बनता है, वह तीर चलाना क्या जाने ?

कला ने मदहोशी से लबालब भरी आंखें मधुकर के सलोने चेहरे पर गड़ा दीं। मधुकर का चेहरा क्षणिक आवेश से लाल हो गया।

वह सब-कुछ भूल गया और उसके ज्ञान-तन्तु जब लौटे, तब कला के आतुर अधरद्वय मधुकर के होंठों के पास आ गये थे।

'माफ कीजियेगा…!' दरवाजे पर दिनेश खड़ा था। मधुकर और कला चौंककर प्रकृतिस्थ हो गये।

दिनेश आंखें तरेरता हुआ कटु स्वर में बोला—'अफसोस है कि मैंने आप लोगों के मध्य में आकर गुस्ताखी की। यदि जानता कि आप लोग ऐसी स्थिति में हैं तो कभी न आता!'

'बिना सूचना दिये क्यों चले आये तुम…?' कला ने रूखे स्वर में पूछा।

'इस पेपर पर आपसे साइन कराना था…।'

दिनेश ने हाथ का कागज कला की मेज पर रख दिया। कला ने फाउण्टेनपेन निकालकर उस पर हस्ताक्षर कर दिये।

'अब तुम जा सकते हो।'

'मैं आपसे कुछ बातें करना चाहता हूं, मिस कला…!' दिनेश अकड़कर बोला—'बातें बहुत आवश्यक और गोपनीय हैं…एकान्त में ही कही जा सकती हैं…।'

कला ने मधुकर की ओर देखा। मधुकर कला का आशय समझ गया और धीरे से कमरे के बाहर हो गया।

'कहो, क्या कहना चाहते हो…?' कला ने पूछा।

दिनेश एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। बोला—'अपनी बात शुरू करने से पहले, मैं यह बता देना चाहता हूं कि आपके प्रति मेरी सहानुभूति है, और एक सम्बन्धी होने के नाते मैं आपका शुभेच्छु भी हूं…।'

एक क्षण रुककर, दिनेश ने अपनी बातों का प्रभाव जानने के लिए स्थिर दृष्टि से कला की ओर देखा।

'धन्यवाद…!' कला बोली—'रुकिए मत—जो कुछ कहना है, शीघ्र कह डालिये—मुझे बहुत काम है…।'

'यह कहना चाहता हूं मैं कि आप क्षणिक आवेश में आकर अपने आपको भूलें नहीं…।' कहने लगा दिनेश—'मैं देख रहा

हूं कि आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रही हैं, वह अशोभनीय है। आपकी बर्बादी मैं नहीं देख सकता, मिस कला…!'

'इसके लिए धन्यवाद ! अब आप जा सकते हैं…,'

'जी नहीं…!' दिनेश अपनी कुर्सी पर से उठकर कला के पास आ खड़ा हुआ—'अभी मैं कुछ और बातें करना चाहता हूं, मिस कला ! आपने अपनी लाइफ का पार्टनर जिस व्यक्ति को चुना है, उसकी परिस्थिति को पुरुष होने के नाते मैं अधिक समझ सकता हूं…मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप उसका साथ छोड़ दें…।'

कला ने आग्नेय नेत्रों से दिनेश की ओर देखा। दिनेश सहम गया।

'क्यों…?' कला ने पूछा।

'वह छलिया है—कपटी है…।' बोला दिनेश—'निम्न श्रेणी का व्यक्ति है। वह आपके योग्य नहीं !'

'दिनेश…!' गरज उठी कला—'यह न भूलो कि मैं कौन हूं ? और तुम किससे बातें कर रहे हो ?'

क्रोध से उसकी मुखाकृति रक्तवर्ण हो उठी थी।

'मैं खूब समझता हूं कि आप कौन हैं और मैं किससे बातें कर रहा हूं…?' दिनेश बोला—'मैं यह भी जानता हूं कि मधुकर किसलिए कानपुर से यहां लाया गया है और क्यों आपने सिफारिश कर उसे अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त करवा लिया है…? मैं यह साफ-साफ बता देना चाहता हूं कि बैंक में तुम दोनों का प्रेमालाप बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगा…।'

'निकल जाओ यहां से…।' चिल्ला उठी कला और उसकी उंगली कॉलिंग बेल पर जा पहुंची। मधुकर तुरन्त ही कमरे में आ गया।

'इस जलील को निकाल दो यहां से…।' कला हांफती हुई बोली।

मधुकर ने मजबूती से उसकी बांह पकड़ ली और उसे दरवाजे से बाहर कर दिया।

जाते-जाते चेतावनी दी उसने—'मधुकर ! तुम सांप से खेल रहे हो। कालेज में तुम मेरे सबसे बड़े शत्रु थे और यहां

भी तुमने मेरा पीछा न छोड़ा। मैं इसे बरदाश्त नहीं कर सकूंगा।'

मधुकर भीतर आया। कला अब भी हांफ रही थी। उसने उसका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बैठा दिया।

'जाने दो—पागल है वह, कला···!' मधुकर ने सान्त्वना दी।

'पागल ही नहीं···।' कला ने कहा—'पागल कुत्ता है···।'

▭ ▭

राय साहब सेठ बिहारीलाल ईवनिंग लाल सूट और नाइट कैप पहनकर क्लब जाने के लिए कार में आकर बैठे ही थे कि आ पहुंचा दिनेश।

'क्या है दिनेश ?' सेठजी ने पूछा और कहा—'बंगले के भीतर जाओ। मधुकर और कला वहीं हैं···।'

'जी नहीं चाचाजी। मुझे आपसे ही कुछ जरूरी बातें करनी हैं···।' दिनेश ने कहा।

'मैं इस समय क्लब जा रहा हूं।' बोले सेठजी—'बहुत जल्दी में हूं। कल आफिस में मुझसे बातें कर लेना···।'

'वे बातें ऑफिस में नहीं की जा सकतीं—गुप्त बातें हैं वे।'

'गुप्त बातें···!' कुछ सोचने लगे सेठजी—'अच्छा तो आओ, कार में बैठ जाओ। रास्ते में कहना···।'

दिनेश कार में बैठ गया। कार चल पड़ी। तब पूछा सेठजी ने—'क्या कहना चाहते हो ?'

'चाचाजी ! मैं जो बात कहने जा रहा हूं, उसे कहने के लिए मुझे बहुत अफसोस है, फिर भी कला की भलाई के लिए मुझे वह बात कहनी ही चाहिये···।'

'तुम निर्भय होकर कहो···!' सेठजी ने आज्ञा दी।

'मैं कहना यह चाहता हूं···।' दिनेश कहने लगा—'कि मिस कला आजकल मधुकर की संगति से अधिक प्रभावित हो रही है, मेरा मतलब यह है कि···।'

'मैं समझ रहा हूं···तुम कहते चलो···।'

'मधुकर की उच्छृंखलता मैं कालेज में भी देख चुका हूं, यहां भी देख रहा हूं। मैं नहीं चाहता कि मिस कला उस

मक्कार मधुकर की बातों में आकर कुछ ऐसा-वैसा कर बैठे…।'

'क्या कहते हो तुम…?' सेठजी की आवाज कुछ तेज हो गई।

'मैं ठीक कह रहा हूं, चाचाजी ! मधुकर एक निर्धन और आवारा लड़का है। कला का उसकी ओर आकर्षित होना हानिकारक होगा।'

'कला खुद अपना बुरा-भला सोच सकती है…।'

'यही तो रोना है…।' दिनेश बोला—'यौवन का आवेग किसी को बुरा-भला सोचने का अवसर नहीं देता, चाचा जी…।'

'ओह ! बहुत बड़े बुजुर्ग हो गए हो तुम। जवानी और बुजुर्गी की दोस्ती मैंने आज ही देखी है…।' सेठजी के मुख पर घृणा के भाव उभर आये।

'मैंने आपको सावधान कर दिया है—यदि आप इस बात पर ध्यानपूर्वक विचार नहीं करते, तो पछताना पड़ेगा आपको …कला और मधुकर में अक्ल नहीं…।'

'अक्ल नहीं है तभी तो वे दोनों में फर्स्ट डिवीजन में बी० ए० पास हुए थे और तुम तीन साल फेल होकर थर्ड डिवीजन में…।' व्यंगमिश्रित स्वर में बोले सेठजी। सेठजी ने ड्राइवर को आज्ञा दी—'कार रोको…।'

कार रुक गई—'उतरो…।' दिनेश से बोले सेठजी।

सहम कर दिनेश कार से नीचे उतर पड़ा। सेठजी ने अपना पर्स खोलकर एक रुपया दिनेश के सामने फेंक दिया। बोले—'सामने न्यू पैलेस में जाकर 'दोस्ती' फिल्म देख लो। सीखो कि मित्र के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है…।'

सेठजी की कार आगे बढ़ गई। दिनेश ने क्रोध से दांत पीस लिये।

उसी दिन शाम को—मधुकर और कला बैंक की भावी उन्नति के लिए कुछ स्कीमें तैयार कर रहे थे। उन स्कीमों अमल करने से सागर बैंक लिमिटेड उन्नति के सर्वोच्च पर पहुंच सकता था।

मधुकर के मस्तिष्क ने ही उन स्कीमों को जन्म दिया

और कला उस पर अपने विचार प्रकट कर रही थी।

दूसरे दिन कला और मधुकर ने अपनी स्कीमों के वे कागजात रायसाहब सेठ बिहारीलाल के समक्ष उपस्थित किये।

सेठजी अपने आफिस-रूम में बैठे हुए दिनेश की कही हुई बातों पर विचार कर रहे थे। उन कागजों को देखकर उन्होंने पूछा—'क्या है ?'

'बैंक की उन्नति के लिए कुछ स्कीमें हैं···।' कला ने उत्तर दिया।

सेठजी अनमने भाव से उन कागजों पर दृष्टि दौड़ाने लगे।

वे सोच रहे थे कि वे अनुभवहीन प्राणी—मधुकर और कला बैंक की उन्नति में क्या कुछ कर सकते हैं, जबकि उन जैसा अनुभवी और व्यवहार-कुशल व्यक्ति उस बैंक का संचालन कर रहा है ?

मगर दो ही कागज पढ़कर, सेठजी की आंखें आश्चर्य से चमक उठीं। वे ध्यानमग्न होकर एक-एक कागज उलटने लगे।

ये वे स्कीमें थीं जिनसे बैंक के प्रत्येक शेयरहोल्डर को पच्चीस प्रतिशत अधिक डिवीडेण्ड दिया जा सकता था। ये वे सुझाव थे जिन्हें सेठजी का परिष्कृत मस्तिष्क भी न सोच सका था।

'किसने तैयार किये हैं ये कागज···?' आश्चर्यचकित मुद्रा में पूछा सेठजी ने।

'मिस कला ने···!' बोला मधुकर।

'मिस्टर मधुकर ने···!' बोली कला।

'जी नहीं—मिस कला ने···।'

'जी नहीं—मिस्टर मधुकर ने···।'

अगम आश्चर्य के साथ सेठजी ने उन दोनों की ओर क्रमशः देखा, जो एक-दूसरे को उन कागजों का प्रस्तुतकर्त्ता बता रहे थे।

यह निश्चित था कि उन दोनों में से एक झूठ अवश्य बोल रहा है।

सेठजी उनका पारस्परिक स्नेह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

'ठीक-ठीक बताओ···?' सेठजी ने गम्भीर होकर पूछा—किसके पास इतना बड़ा मस्तिष्क है, जिसने मेरे मस्तिष्क को

भी पराजित किया—कला ! क्या यह तुम्हारे मस्तिष्क की उपज है ?'

'जी नहीं पिताजी···!' कला बोली—'मेरा मस्तिष्क तो बहुत छोटा है···।'

'क्या यह तुम्हारी उपज है, मधुकर—?'

'जी नहीं बाबूजी ! मेरा मस्तिष्क तो और भी छोटा है, तोले भर का···।'

उठती हंसी को भीतर ही भीतर जज्ब कर सेठजी ने गंभीर स्वर में पूछा—'सच-सच बताओ—'किसने कागज तैयार किये हैं ?'

सेठजी का स्वर कठोर था, परन्तु उस कठोरता के पीछे वात्सल्य अन्तर्हित था।

'मिस्टर मधुकर ने तैयार किये हैं, पिताजी !'

'शाबाश बेटा···!' सेठजी ने हर्षित होकर मधुकर की पीठ ठोकी।

'आज तुमने मुझे बेदाम खरीद लिया है—तुम देखोगे कि इन स्कीमों से हमारा बैंक अगले महीने बम्बई के बड़े बैंकों की श्रेणी में आ जायेगा···।' और सेठजी उन कागजों को फिर पढ़ने लगे।

मधुकर और कला अपने आफिस में पहुंचे तो कला बोली—'पिताजी तुमसे खुश हैं, मधुकर···! अब पिताजी तुम्हें मुंहमांगा इनाम देंगे···।'

'क्या इनाम देंगे···?' पूछा मधुकर ने।

'जो तुम मांगोगे···।' कहते-कहते कला के कपोल अरुणिम हो उठे।

'मैं तो सेठजी से तुम्हें मांग लूंगा।' हंसकर बोला मधुकर—'कम से कम तुम्हारे रहने से मेरी लापरवाही तो दूर हो जायेगी···।'

'मांग लो, मुझे इनकार थोड़े ही है।' कहती हुई कला लाज से सिमट गई। गला अवरुद्ध हो गया।

मधुकर को अपनी गलती महसूस हुई। उसने तो हंसी-हंसी में ये बातें कही थीं, परन्तु कला ने मदहोशी में उन्हें सच मान लिया···मधुकर जानता है कि कला के हृदय में उसके

लिए क्या भाव हैं ? और यह नादान युवती उसके पैरों पर अपना हृदय रखकर किस वस्तु की चाहना करती है, परन्तु विवश है मधुकर !

उसके हृदय में कला के लिए अब तक केवल सहानुभूति है।

हां, कभी-कभी ऐसा हुआ है कि कला ने किसी विशेष परिस्थिति में अपनी जवानी की मादकता उसकी आंखों में उड़ेल दी है और मधुकर बदहोश हो उठा है—परन्तु आवेग शान्त हो जाने पर वह घन्टों पछताया है।

उसी समय चपरासी ने आकर निवेदन किया—'हुजूर ! आप दोनों को बड़े हुजूर बुला रहे हैं···।'

वे सेठजी के सामने आकर खड़े हो गए।

'कला···!' सेठजी बोले—'तुम मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद के लिए अयोग्य प्रमाणित हुई हो···मैंने देखा है कि तुम चुपचाप कुर्सी पर बैठी रहती हो और मधुकर को ही सारा काम करना पड़ता है। तुम्हारा भी और अपना भी। और आज मधुकर ने अपने मस्तिष्क की योग्यता प्रमाणित कर दी है, अतः मैं उसे ही मैनेजिंग डाइरेक्टर नियुक्त करता हूं···तुम्हें मधुकर के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम सम्हालना होगा···।'

'बाबूजी···!' मधुकर ने कुछ कहना चाहा।

'तुम चुप रहो, मधुकर···!' मीठी झिड़की दी सेठजी ने —'मैं तुम्हारी योग्यता का उचित पुरस्कार देना चाहता हूं। मैं कृतघ्न नहीं···।'

'परन्तु मैं और कला—दो नहीं हैं, बाबूजी।'

न जाने कैसे मधुकर के मुख से उपरोक्त वाक्य निकल पड़ा।

'ईश्वर न करे कि तुम लोगों को कभी दो होना पड़े···!' बोले सेठजी—'कल तुम अपना चार्ज कला के हवाले कर दो··· जा सकते हो तुम लोग अब !'

मधुकर और कला अपने आफिस में आये। दोनों बहुत प्रसन्न थे।

'मधुकर···।' आत्मविभोर कला ने उनींदी आंखों से मधुकर की ओर देखते हुए पुकारा।

'कला···!' मधुकर ने कला का हाथ पकड़कर कुर्सी पर बिठा लिया।

'आज मैं बहुत खुश हूं···' बोली कला।

'क्यों···? क्या पाया है तुमने—?' पूछा मधुकर ने।

'तुम्हें···!' विह्वल स्वर में बोली कला। मधुकर ने होंठों पर उंगली रख, उसे चुप रहने का संकेत किया।

▭ ▭

अब तो मधुकर का जीवन और व्यस्त हो गया। मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर आ जाने से उसकी जिम्मेदारियां भी बढ़ गईं, वेतन पांच सौ रुपये मासिक हो गया। कला अब उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी थी।

उस दिन कला ने कुछ कागजात मधुकर की मेज पर ला रखे और अदब के साथ खड़ी रही। मधुकर ने पूछा—'यह क्या है?'

'फाइलें हैं। आपके दस्तखत इन पर होने हैं।'

'तुम मुझे 'आप' कब से कहने लगीं···?' होंठों में मुस्कराते हुए मधुकर ने कला की ओर देखा।

'जब से आप मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठे हैं···।'

'अरे! तुम खड़ी क्यों हो—? बैठ क्यों नहीं जातीं?'

'आपने बैठने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए···' हिचकिचाने का अभिनय करती हुई कला कुर्सी पर बैठ गई।

'कला! हमारी-तुम्हारी घनिष्ठता क्या मेरे इस पद से भंग हो सकती है? हम तो वही रहेंगे जो पहले थे···।'

'जी नहीं···' कला ने कहा—'ऑफिस में आप मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हैं और मैं प्राइवेट सेक्रेटरी के। इसलिए मुझे आपका सम्मान करना आवश्यक है···।'

यही वे बातें थीं, जो एक दिन उन दोनों में हुई थीं, जब मधुकर प्राइवेट सेक्रेटरी था और कला मैनेजिंग डाइरेक्टर। और आज पुनः वही बातें हुईं। मगर आज कला के लिए सेठजी ने आकर 'शाबाश' नहीं कहा—तो मधुकर ही उनके स्वर की नकल करता हुआ बोला—'शाबाश!'

और फिर दोनों हंस पड़े।

शाम को जब मधुकर चर्नी रोड वाले अपने निवास पर

आया, तो उसका हृदय उल्लसित था, जाने क्यों ? उसने कला के साथ सिनेमा चलने का अनुरोध अस्वीकार कर दिया था और चर्चगेट पर चाय भी नहीं पी थी। उसका मन ग्लानि के प्रवाह में पड़कर डूबा जा रहा था। उफ ! वह क्या था—क्या हो गया !

एक जमाना था जबकि मधुकर के हृदय में कला के प्रति केवल सहानुभूति थी और कुछ नहीं—कोई आकर्षण नहीं—कोई मदहोशी नहीं—कुछ भी नहीं ! परन्तु सदैव कला के साथ रहते-रहते, उसकी मधुर बातें सुनते-सुनते, उसके यौवन का निरीक्षण करते-करते, उसके नयनों की मदिरा पीते-पीते, वह मदहोश हो चला था।

कला के अत्यधिक सम्पर्क ने उसकी चेतना छीन ली थी। वह किधर बहा जा रहा है, इसका ध्यान उसे न था। मधुकर स्वयं नहीं जानता था कि उसमें इतना परिवर्तन किस प्रकार हो गया, किस प्रकार इस घनिष्ठता ने उसकी राह में रोड़ा बनकर मार्गावरोध उत्पन्न कर दिया, किस प्रकार हृदय की सारी विचार-शक्ति कला की आँखों ने छीन ली।

धीरे-धीरे हुआ यह सब और मधुकर अनभिज्ञ रहा।

उसने अपने हृदय की दृढ़ता को, गम्भीरता को, प्रबल-प्रवाह की धारा में छोड़ दिया और उसका फल यह हुआ कि आज उसका चंचल हृदय परिस्थिति की मादकता को न सम्हाल सका—उसका बेलगाम दिल बेहोश होकर कला के पैरों पर जा पड़ा—उसके मदहोश नेत्र कला की जवानी पर आ अटके—उसके उल्लसित हाथों ने कला को गठरी-सा समेट लिया—उसके धड़कते कलेजे ने कला के हृदय को अपनी धड़कनों का ज्ञान करा दिया, और···और युग-युग के प्यासे अधरों ने कला के अधरों की प्यास बुझा दी···उस घटना की याद कर मधुकर का हृदय आत्म-ग्लानि से भर उठा।

कला ने उसकी इस हरकत पर कोई अप्रसन्नता नहीं प्रदर्शित की थी, इसके विपरीत उसके आरक्त मुख पर सुन्दरतम लज्जा का नृत्य हो उठता था, जिससे वह और भी आकर्षक लगने लगती थी—परन्तु मधुकर के ज्ञान-तन्तु उसी क्षण उसे धिक्कार उठे थे। ओह ! क्या कर डाला उसने ? हाथ मल

रहा था वह अपनी नादानी पर।

'मुझे माफ करना कला···' अपनी नादानी की माफी भी मांगी थी मधुकर ने।

'ऐसा क्यों कहते हो मधुकर? मेरा सब-कुछ तो तुम्हारा ही है···' कहकर कला ने मधुकर की उस हरकत पर प्रसन्नता प्रकट की थी।

परन्तु धिक्कार रहा था मधुकर का हृदय! इस समय वह अपने बिस्तर पर पड़ा उन बातों को सोचता हुआ करवटें बदल रहा था···आज क्षणिक आवेश में आकर उसने न केवल कला का अपमान किया है, वरन स्वयं अपने साथ विश्वासघात किया है और छल किया है उस कोमल कलिका के प्रति, जिसका सर्वस्व उसने भ्रमर बनकर उस अंधेरी रात में लूट लिया था।

कंचन की याद आते ही मधुकर का सारा शरीर सिहर उठा। इतने दिनों तक मधुकर को कंचन की सुध आई ही न थी—आई भी, तो इतनी क्षणिक थी वह कि उसने उस पर कुछ ध्यान ही न दिया था। कुछ दिनों तक तो वह अपनी मां के मरने पर शोकाकुल रहा, फिर बम्बई आया तो आवश्यक कामों में व्यस्त हो गया, यहां तक कि वह कंचन को दिये गये अपने वचन को भी विस्मृत कर बैठा।

मगर आज कंचन की याद उसे इस तरह सता रही थी, जैसे कलेजे में आग की लपटें उठ रही हों। वह लड़खड़ाता हुआ उठा और मेज के पास आ बैठा। जीवन को पत्र लिखने लगा वह—मित्र, मैं बहुत लज्जित हूं कि तुमसे शीघ्र आने का वचन देकर भी, आना तो दूर रहा, मैंने तुम्हें पत्र तक नहीं लिखा। तुम्हारे वहां से आने पर मैंने देखा कि मेरी मां मेरे आने के पूर्व ही चल बसी हैं। बहुत दुख हुआ इस घटना से मुझे।

मां के मर जाने पर अब जीविका का प्रश्न मेरे सामने आया। यद्यपि तुमने भी मेरी सहायता का वचन दिया था—परन्तु उस समय मैं इतना विक्षिप्त हो रहा था कि उचित-अनुचित का ध्यान ही न रहा। सो एक दिन मैंने कलाकुमारी को उसके बैंक में नौकरी करने की स्वीकृति दे दी। कला को तुम जानते ही हो—वही तुम्हारे हृदय-मन्दिर की देवी—मगर

तुम्हारे लिए तो वह पत्थर निकली !

आज मैं बम्बई में उसी के बैंक में कार्य कर रहा हूं। मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हूं और पांच सौ वेतन पाता हूं। आगे भी उन्नति की आशा है। कंचनमाला से मेरी ओर से क्षमा मांग लेना। आशा है शीघ्र ही तुम लोगों के दर्शन कर सकूंगा...एक बात जो बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है, उसे लिखने में मुझे लज्जा और संकोच हो रहा है, फिर भी लिख रहा हूं, क्योंकि सम्मुख कहने में तो और भी लज्जा का बोध होता। तुम मेरे मित्र हो, आशा है तुम मेरी इस बात पर ध्यानपूर्वक विचारकर उत्तर दोगे। वह मेरे जीवन की सुख-शान्ति की, भविष्य-निर्माण की आधार-शिला है !

तुम जानते ही हो कि अपने हृदय पर मनुष्य का अधिकार नहीं होता—वह जब किसी पर मुग्ध हो जाता है तो हृदय को सम्हालना उसके लिए असम्भव हो जाता है। क्या मैं अपनी मित्रता के नाम पर, तुमसे जीवन भर के लिए कंचनमाला को मांग सकता हूं ?

आशा है तुम अस्वीकार न करोगे—क्योंकि यह दो प्राणियों के जीवन-मरण का प्रश्न है।

तुम्हारे पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में—तुम्हारा अनन्य मधु !

दूसरे दिन यह पत्र डाक में छोड़ दिया गया।

दस बजे जब मधुकर ऑफिस पहुंचा, तो कला उसके पहले ही आ पहुंची थी। आज उसने नवीन आकर्षक परिधान धारण किया हुआ था। कदाचित इसलिए कि कल मधुकर ने जो हरकत की थी, उसे और भी प्रोत्साहन मिले। मगर मधुकर अतिशय गम्भीर था। कला की ओर देखे बिना ही वह अपनी कुर्सी पर जा बैठा।

'गुड मॉर्निंग सर !' कला ने मुंह बनाकर अभिवादन किया।

मगर मधुकर चुप रहा, तो कला ने सर उठाकर देखा—देखा कि एक ही दिन में मधुकर में विचित्र परिवर्तन हो गये हैं। सर के बाल रूखे हो रहे हैं, जैसे उसने कई दिनों से बालों में तेल नहीं लगाया हो—आंखें लाल हैं जैसे वह रात भर जागता रहा हो—मुखाकृति गम्भीर है, जैसे किसी गहन चिन्ता ने उसे

उद्वेलित कर रखा हो।

'तुम्हें क्या हो गया है, मधुकर? ऐसे क्यों रो रहे हो···?' कला मधुकर के पास आकर स्नेहिल स्वर में बोली।

'तुम जाकर अपना काम करो, कला···!' स्वर रूखा था मधुकर का। कला को आन्तरिक वेदना हुई मधुकर की अवहेलना पर। वह रूठकर अपनी कुर्सी पर जा बैठी।

चार दिन व्यतीत हुए—इस बीच कला और मधुकर के मध्य केवल आवश्यक बातें हुईं, जो बैंक के काम से सम्बन्धित थीं। एक भी बेकाम की बात न हुई। सिनेमा जाना, सैर-सपाटे करना आदि एकदम बन्द हो गया था। कला और मधुकर एक-दूसरे के इतने नजदीक होते हुए भी मानो बहुत दूर थे।

कला अत्यन्त दुःखी थी मधुकर की यह अन्यमनस्कता देखकर। वह मधुकर की रुष्टता का कारण नहीं समझ पा रही थी। मधुकर के हृदय पर जो बीत रहा था, उससे वह सर्वथा अनभिज्ञ थी। चाहती थी कला कि वह मधुकर से उसके दुःख का कारण पूछे, परन्तु उसकी गम्भीरता के पीछे जो करुणा छिपी थी, उस करुणा को देखकर वह साहस नहीं कर पाती थी कि कुछ पूछे।

पांचवें दिन—मधुकर और गम्भीर था। आते ही कुर्सी पर बैठ गया और न जाने किन विचारों में तल्लीन हो गया।

आज कला ने मधुकर से बातें करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। मधुकर की यह गम्भीरता उसे असह्य हो उठी थी। वह उठकर मधुकर के पास आई। नम्र स्वर में पूछा उसने—

'क्या सोच रहे हो···?'

'कुछ भी तो नहीं।' मलिन मुस्कराहट के साथ मधुकर ने कहा।

'एकदम झूठ! बताओ मुझे, कि तुम क्या सोचा करते हो? तुम्हें किस बात का दुःख है—? क्या कष्ट है तुम्हें···?'

'तुम व्यर्थ परेशान हो रही हो, कला···!' करुण स्वर में बोला मधुकर—'मुझे कोई कष्ट, कोई दुःख नहीं···।'

'झूठ तो तुम मुझसे कभी नहीं बोले थे, मधू···! आज यह पहला अवसर है जबकि मुझसे झूठी बात कर रहे हो···मैं देख रही हूं कि तुम स्वयं तड़प रहे हो और मुझे भी तड़पा रहे

हो···तुम स्वयं जल रहे हो और मुझे भी जला रहे हो···।'

'कला···!' मधुकर का हृदय कला की बेकली देखकर भर आया। वह उठकर खड़ा हो गया। कला का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाता हुआ बोला—'ऐसा न कहो कला···! तुम मुझे समझने में गलती कर रही हो···।'

'मधू···!' कला लुढ़क कर मधुकर की छाती पर आ रही। मधुकर ने उसे अपनी बांहों में सम्हाल लिया, कोई विरोध नहीं किया।

कला के कोमल शरीर का मादक सम्पर्क मधुकर के लिए एक नवीन उत्तेजना की सृष्टि कर गया—उसके हाथों ने कब कला के फूल-से बदन को सीने से लगा लिया, यह वह स्वयं नहीं जान सका।

'कला···!' स्वस्थ होकर बोला मधुकर—'रिफ्रेशमेन्ट रूम में जाकर कुछ नाश्ता कर लो। एक कप चाय पीते ही तुम्हारा आवेग दूर हो जायेगा···।' परन्तु कला का आवेग मधुकर के आलिंगन से ही दूर हो चुका था, फिर भी मधुकर को प्रसन्न देखना चाहती थी वह, इसीलिए चाय पीने चली गई।

मधुकर कुर्सी पर बैठकर पुनः गम्भीर विचारों में निमग्न हो गया।

उस दिन अपने जिस कृत्य पर मधुकर को महान ग्लानि हुई थी, वही कृत्य आज, अभी-अभी वह कला के साथ पुनः कर बैठा था।

परन्तु क्या करे मधुकर, अपने नादान हृदय को—जो इतना कमजोर था कि परिस्थिति की मदहोशी और यौवन का आवेग नहीं सम्हाल पाता था। विवश था मधुकर अपने हृदय से। फिर भी मधुकर के किसी कोने में सद्भावना जागरूक थी।

मधुकर की विचार-धारा भंग हो गई, कला को दौड़ते हुए ऑफिस रूम में आया देखकर।

'क्या बात है कला?' पूछा मधुकर ने।

हांफ रही थी वह। कलेजा जोरों से धड़कने के कारण पुष्ट वक्षस्थल तेजी से उठ-बैठ रहे थे। चेहरा आवेशमय हो रहा था। बदन कांप रहा था। मधुकर अधीरता से उठकर

कला के पास आया। उसका हाथ पकड़ कर अपनी कुर्सी पर बैठाता हुआ प्यार से पूछा उसने—'क्या बात है कला? हांफ क्यों रही हो? चेहरा तमतमाया हुआ क्यों है? क्या मुसीबत आ पड़ी है तुम पर···?'

पूर्ववत् हांफती हुई वह बोली—'दिनेश ने मेरा अपमान किया है!'

'तुम्हारा अपमान किया है उसने? किस तरह···? कथनी से या करनी से···?' पूछा मधुकर ने।

'दोनों प्रकार से···।' कला ने कहा—'अगर मुझमें शक्ति होती तो उसका खून पी जाती···।'

मधुकर उत्तेजित हो उठा। कला का अपमान वह देख-सुन नहीं सकता था। पूछ बैठा—'उसने क्या कहा और क्या किया···?'

कांपती आवाज में उसने बताया—'मुझे प्राइवेट रूम में बुलाकर वह ऊल-जलूल बातें बकने लगा। जब मैंने विरोध किया तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और मेरे हाथ को अपनी छाती पर रखकर बोला—'कला! इस कलेजे की धड़कन सुनो, इस हृदय की व्यथा देखो—मैं तुम्हें प्यार करता हूं, रानी···!' कहकर उसने मेरे हाथों को खींचा और सम्हल सकने के पूर्व ही मैं उसके सीने पर लुढ़क पड़ी।'

मधुकर ने क्रोध में दांत पीसे! उसकी बलिष्ट भुजाएं उत्तेजित हो कांप उठीं। उसकी उंगलियां कॉलिंग बेल पर जा पड़ीं।

चपरासी आ उपस्थित हुआ। आदेश दिया मधुकर ने—'दिनेश को बोलो कि डाइरेक्टर साहब बुला रहे हैं···।'

दो मिनट बाद दिनेश ने उस कमरे में प्रवेश किया। तीव्र स्वर में उसने पूछा—'क्या है मधुकर? क्यों बुलवाया मुझे···?'

मधुकर उसकी बेअदबी देखकर और भी क्रोधित हो उठा। बोला—'अदब से बातें करो, दिनेश! यह मत भूलो कि तुम किसके सामने खड़े हो···।'

'मैं खूब समझता हूं···!' घृणामिश्रित स्वर में बोला दिनेश—'अपनी प्रशंसा का ढोल अपने से नहीं पीटा जाता,

मधुकर···! क्या तुम जबरदस्ती लोगों से अपनी इज्जत करवाना चाहते हो···?'

'तुम्हारा मतलब···?' पूछा मधुकर ने।

'मतलब यह है कि जिस दर-दर की ठोकरें खाता देख चुका हूं, उसे मुंह लगते नहीं देख सकूंगा···। पैर की ठोकर खाकर धूल मस्तक पर चढ़ जाती है, मगर उसकी इज्जत नहीं बढ़ जाती, मि० मधुकर!'

'चुप रहो···!' गरज पड़ा मधुकर—'तुमने कला का अपमान क्यों किया? इस बात का जवाब दो मुझे?'

'तुम कौन हो जवाब तलब करने वाले···?' दिनेश कहने लगा—'यह मेरी और कला की आपसी बातें हैं, उन्हें जानने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। मैं कला का रिश्तेदार हूं। तुम कौन होते हो उसका?"

'कला मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी है···।'

'सेक्रेटरी···!' घृणा से मुंह सिकोड़ा दिनेश ने—'यह क्यों नहीं कहते कृतघ्न! कि कला तुम्हारी अन्नदात्री है। यह भूल क्यों जाते हो कि आज कई साल से तुम्हारा यह शरीर कला के टुकड़ों पर पल रहा है···।'

'मधुकर···!' बेबसी भरे स्वर में कला बोली—'इनके मुंह न लगो, जाने दो इसे···।'

'मेरी बातों का ठीक-ठीक जवाब दो, दिनेश···!' कला की बातों पर कोई ध्यान न दे मधुकर ने गरजकर दिनेश से कहा—'तुम कला का अपमान कर, अब मेरा भी अपमान करने की धृष्टता कर रहे हो···।'

'तुम्हारे अपमान का मेरे समक्ष कोई मूल्य नहीं···।' कहा दिनेश ने और अकड़कर वह दो पग और आगे बढ़ आया।

मधुकर को पूर्णतया उत्तेजित देख कला ने उसका हाथ पकड़ लिया, परन्तु मधुकर अपना हाथ छुड़ाकर दिनेश के पास आ खड़ा हुआ।

'मैं कहता हूं, दिनेश! कि चुपचाप यहां से चले जाओ···।'

'तुमने मुझे कायर समझ रखा है? क्या कर लोगे तुम मेरा?'

'बताऊं क्या कर लूंगा···?' दांत पीसे मधुकर ने।

'देखूं तुम्हारी हिम्मत···!' दिनेश ने अपनी आस्तीन ऊपर उठाई।

मधुकर को अब अपना क्रोध सम्हालना असम्भव हो गया। अन्तिम बात दिनेश के मुख से निकलते ही मधुकर का जबरदस्त घूंसा दिनेश की कनपटी पर जा बैठा। दिनेश का माथा चकरा गया। मधुकर अपने कॉलेज में बॉक्सिंग का चैम्पियन था, तो भला उसके घूंसे की चोट कैसे सम्हाल सकता वह! लड़खड़ा कर गिरते-गिरते बचा। उसने मधुकर पर चोट करने के लिए हाथ उठाया, परन्तु मधुकर ने उसका उठा हुआ हाथ पकड़कर इस प्रकार पीछे मरोड़ दिया कि दिनेश चीख उठा।

मधुकर ने उसे दूर धकेल दिया।

दिनेश जाते-जाते बोला—'चुटीला सांप अपनी चोट कभी नहीं भूलता, मधुकर! एक-न-एक दिन तुम डंसे जाओगे···।' और वह लड़खड़ाता हुआ रायसाहब सेठ बिहारीलाल के ऑफिस की ओर बढ़ चला।

मधुकर कुर्सी पर बैठकर एक सिगरेट जलाकर पीने लगा। उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। कला भी शान्त हुई।

'कितना शैतान है, यह दिनेश···!' कला बोली।

'उसकी शैतानी अब भूल जाएगी···।' मधुकर ने कहा।

उसी समय सेठजी के चपरासी ने भीतर प्रवेश कर अभिवादन किया और बोला—'आप दोनों को सेठजी याद कर रहे हैं···।'

मधुकर और कला का माथा ठनका। दोनों सेठजी के ऑफिस रूम में आये।

सेठजी अतिशय गम्भीर मुखाकृति लिये कुर्सी पर बैठे थे। अस्त-व्यस्त दिनेश पास ही खड़ा था।

कला और मधुकर उनके पास आकर चुपचाप खड़े हो गए। सेठजी ने सर उठाकर उन दोनों की ओर एक क्षण तक देखा और पुनः सर नीचा कर लिया। सारी बातें दिनेश खूब बढ़ा-चढ़ाकर सेठजी से कही थीं और सेठजी के अन्तःकरण में इस समय विचारों का संघर्ष हो रहा था। मधुकर को वह बहुत चाहते थे—और दिनेश उनके रिश्तेदार का लड़का था। परिस्थिति अत्यन्त जटिल हो गई थी।

मधुकर के मस्तिष्क ने ही बैंक की इतनी उन्नति की थी—वह अत्यन्त कार्यकुशल युवक था और उधर दिनेश के पिता ने सेठजी को अति विनम्र शब्दों में लिखा था कि निनेश को अपना बेटा समझकर रखियेगा और उसकी देख-भाल कीजियेगा।

सेठजी ने सर उठाया। दिनेश से गम्भीर स्वर में बोले—'तुम जाकर अपना काम करो···।'

दिनेश चला गया सर नीचा किए हुए—मगर उसकी आंख अंगारों की तरह लाल थीं।

'मधुकर !' सेठजी ने मधुकर की ओर देखा।

'जी, बाबूजी···।'

'जी बाबूजी नहीं—यस सर कहो···।' सेठजी रूखी आवाज में बोले—'तुम जानते हो कि बैंक के नियमों का उल्लंघन मेरे लिए असह्य है···।'

'सर ! मैं जानता हूं···।' मधुकर बोला।

'तुमने बैंक की शान्ति में अशान्ति उपस्थित की है—ऐसा क्यों हुआ···?' सेठजी ने मधुकर की बात पूरो नहीं होने दी।

'बात यह है पिताजी···।'

'तुम चुप रहो कला···!' सेठजी ने कला को बीच में ही रोक दिया—'मैं मधुकर से बातें कर रहा हूं···हां ! तो मुझे सारी घटना बताओ, मिस्टर मधुकर···।'

आज यह पहला अवसर था जबकि मधुकर को सेठजी ने मिस्टर मधुकर कहकर पुकारा था। मधुकर ने संक्षेप में सारी घटना सुना दी, किन्तु दिनेश द्वारा कला के अपमान करने की बात एकदम छिपा ली, क्योंकि यह कला की इज्जत का सवाल था—केवल यह कह दिया कि दिनेश ने कला से ऐसी बातें की थीं, जो एकदम अनुचित थीं।

'मिस्टर मधुकर···!' बोले सेठजी—'तुम कबूल करते हो कि तुम्हीं ने पहले दिनेश पर घूंसा चलाया, उसने एक भी वार नहीं किया तुम पर···।'

'उसने वार करना चाहा था···।' मधुकर ने कहा—'मगर मैंने उसे अवसर नहीं दिया···।'

'मगर मार-पीट प्रारम्भ करने वाले तुम्हीं थे न···? वह

बातें कर रहा था तुमसे, तुम भी उसकी बातों का जवाब देते या मेरे पास आते···? ऐसा न करके उस पर हाथ क्यों छोड़ा?'

'उसकी बातें मेरी सहनशीलता को पार कर गई थीं, सर···!'

'यह तुम जानते थे न कि वह मेरा रिश्तेदार है—फिर तुम्हें उसके साथ उलझने का साहस कैसे हुआ···?'

'मैं बहुत शर्मिन्दा हूं, सर···!' धीरे से कहा मधुकर ने।

सेठजी ने स्थिर दृष्टि से मधुकर की ओर देखा, फिर पैड से एक कागज निकालकर उस पर कुछ लिखने लगे। लिख चुकने पर उन्होंने वह कागज मधुकर की ओर बढ़ा दिया।

बोले—'मिस्टर मधुकर! तुम्हारे बहुत से उपकार बैंक के ऊपर हैं, इसलिए मैं कृतघ्न होकर तुम्हारे विरुद्ध कोई कड़ा कदम नहीं उठाना चाहता कि तुम्हारी और दिनेश की वैमनस्यता बढ़ती जाय, इसलिए तुम्हारा तबादला पूना ब्रांच में मैनेजर के पद पर किए दे रहा हूं। वहां तुम्हारे सेक्रेटरी का काम मिस आइडा रिबेला सम्हालेगी और मिस्टर टामसन यहां आकर मैनेजिंग डायरेक्टर का पद ग्रहण करेंगे तथा कला उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी होगी···।'

'पिताजी···!' कला ने कुछ कहना चाहा।

'बेटी···!' सेठजी बोले—'मैं विवश हूं! परिस्थिति अनुकूल होते ही मधुकर पुनः यहां आ जायगा, या तुम्हीं पूना भेज दी जाओगी···जाओ तुम लोग!'

मधुकर और कला दुखित हृदय लिए अपने आफिस में आये। एक-दूसरे से बिछुड़ने का दोनों को दुःख था। मगर विवश थे दोनों।

पांच बजे वह अपने डेरे पर आया, तो नौकर ने आज की डाक से आया हुआ एक लिफाफा उसके आगे रख दिया।

पत्र जीवन का था। देखते ही मधुकर का हृदय एक क्षण के लिए हर्षित हो उठा। पढ़ने लगा जल्दी-जल्दी—

निर्मोही मित्र,

महीनों प्रतीक्षा करने के बाद तुम्हारा पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने सोचा, कंचन तुम्हारा पत्र देखकर बहुत

खुश होगी। तुम्हारे लिए वह कितनी व्यग्र, कितनी व्यथित, कितनी उदास थी, यह मैंने अपनी आंखों से देखा था। अतः मैंने झटपट कारखाने का काम निपटाया और तेजी से बग्घी घर की ओर बढ़ाने की आज्ञा दी। खुशी से मैं पागल हो रहा था उस समय, क्योंकि मुझे अपनी मरती हुई बहन के लिए अमृत मिल गया था। थोड़ी ही देर बाद बग्घी मेरे बंगले के सामने आ खड़ी हुई। मैं तेजी से उतर पड़ा और झपटता हुआ दरवाजे पर आया।

'कंचन !' मैंने दरवाजे पर से ही पुकारा। परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। मैं मकान के अन्दर भागा, चिल्लाता हुआ—'कंचन इधर आ, देख, मैं तेरे लिए क्या लाया हूं···मगर कोई मेरे सामने नहीं आया।'

घबड़ाता हुआ सीढ़ियां चढ़कर मैं उसके कमरे में पहुंचा। देखा—कमरे में कोई न था। केवल निर्जीव सामान इधर-उधर पड़े हुए थे। मेरा जी धक्क से हो गया।

'कंचन···कंचन···कंचन !' चिल्लाते-चिल्लाते मैं थक गया, परन्तु कंचन की वह मधुर आवाज़—'आई भैया' मेरे कानों में नहीं पड़ी। हृदय तीव्र आशंका से भर उठा। धड़-धड़ाता हुआ सीढ़ियां उतरकर नीचे आने लगा। सोचा शायद बगीचे में हो। परन्तु दुर्भाग्य पीछे पड़ा हुआ था। धोती में पैर फंस गया और मैं लुढ़कता हुआ पचीसों सीढ़ियां नीचे आ गिरा।

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुझे पैर ही न हों। मैं उठ नहीं सकता था। मैंने नौकरों को पुकारा। सब घबड़ाये हुए दौड़े आये। एक ने मुझे सहारा देकर उठाया। मैंने चलने के लिए पैर बढ़ाना चाहा तो असह्य यन्त्रणा से चीख उठा। एक नौकर की पीठ पर चढ़कर मैंने बाग का जर्रा-जर्रा, बंगले का कोना-कोना छान डाला—परन्तु कंचन न मिली।

चली गई कंचन ! कंचन चली गई मुझे छोड़कर ! मेरा हृदय चीत्कार कर उठा। बेहोश होकर मैं गिर पड़ा। मेरी टांग टूट गई थी—मेरा दिल टूट गया था। दो दिन तक मैं विक्षिप्त-सा बैठा रहा, टूटी टांग पर खपच्ची लगाये। मेरे वफादार नौकर शहर में चारों ओर दौड़ते रहे। शहर की हर गली-सड़क, नदी-नाले, सरोवर कुए—सब खोज डाले उन्होंने

…मगर कंचन न मिली। उसकी लाश भी न मिली। मेरी लुटी हुई शान्ति भी न मिली।

लुटेरे मधुकर! आज मैं अपनी टूटी टांग और तड़पता दिल लेकर आंसू बहाता हुआ पलंग पर लेटा हूं और तुम्हें जी भरकर गालियां दे रहा हूं। तुम्हीं ने मुझे लूटा—तुम्हीं ने मुझे बरबाद किया—तुम्हीं ने मुझसे मेरी बहन छीन ली—निर्दयी, शैतान! अगर तुम मेरे पास होते तो निश्चय ही मैं तुम्हारा खून कर डालता, परन्तु अफसोस कि मैं पलंग से उठ भी नहीं सकता और तुम काले कोस जा बसे हो।

तुम मरो, सिसको, तड़पो—यही मेरी आकांक्षा है, यही मेरा श्राप है। अब तुम मेरे पास कभी न आना और यदि आना तो अपनी जान हथेली पर लेकर आना…।

मैं हूं तुम्हारा मित्र (अब शत्रु)

पत्र के अक्षर जगह-जगह फैले हुए थे और आंसुओं की बूंदें गिरी हुई साफ मालूम पड़ रही थीं। कदाचित पत्र लिखते समय जीवन रोता रहा है।

पत्र समाप्त कर मधुकर ने उसे मेज पर रख दिया और चारपाई पर बदहवास-सा गिर पड़ा और फफककर रो उठा। तकिये का गिलाफ भीग गया, परन्तु मधुकर रोता ही रहा, रोता ही रहा। उसने जो कुछ किया था, उसके लिए उसे महान् ग्लानि हो रही थी—दारुण पश्चात्ताप की ज्वाला उसके नेत्रों से आंसू बनकर निकल रही थी।

कंचन! मेरी कंचन…! तुम कहां हो? तुम घर से क्यों चली गई? मैंने पत्र लिखने में देर अवश्य कर दी, पर तुम्हें प्रतीक्षा करनी चाहिए थी? क्यों तुमने आत्महत्या कर ली? तुमने तो अपनी जान देकर सारे कष्टों से छुट्टी पा ली और मुझे जीवन भर तड़पने के लिए छोड़ गई…? ऐसा तुमने क्यों किया, कंचन…? क्यों किया ऐसा…? रात भर मधुकर रोता और बड़बड़ाता रहा।

▭ ▭

पूना केशकर पेठ रोड पर सागर बैंक का ब्रांच आफिस था। उस विशाल भवन में बैंक का कारबार होता था। आज ही मधुकर बम्बई से यहां आया था और ब्रांच मैनेजर का काम

सम्हाला था उसने। मिस आइडा रिबेला उसकी सेक्रेटरी थी। मिस्टर टामसन मैनेजिंग डायरेक्टर का पद ग्रहण करने हेड आफिस चले गये थे।

रिबेला ने आज पहले-पहल पूना में मधुकर को देखा, तो वह उसे पहचान ही न सकी। ऐसा लगता था, जैसे वह महीनों से बीमार रहा हो। उसके मुख पर की सारी रौनक कपूर बन कर उड़ गई थी।

'आपकी तबीयत इधर खराब थी क्या?' रिबेला ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में पूछा।

'जी नहीं···!' मधुकर ने उत्तर दिया—'तबीयत मेरी कभी खराब नहीं हुई···।'

रिबेला ने मधुकर के सामने कुछ टाइप किए हुए कागज ला रखे थे और मधुकर उन पर हस्ताक्षर कर रहा था। हस्ताक्षर कर चुकने पर उसने कागज रिबेला की ओर बढ़ा दिये। रिबेला कागज लेकर गई नहीं, खड़ी रही। बोली—'पिछले महीने बैंक की तरक्की के लिए आपने जो स्कीम बनाई थी, वह तो बहुत कामयाब रही···।'

'धन्यवाद···!' मधुकर ने कहा।

'दरअसल वह आप ही जैसे दिमागदार का काम था, वरना और कोई उसे सोच भी नहीं सकता था···मिस्टर टामसन भी आपकी तारीफ कर रहे थे!'

'अच्छा···!' आश्चर्य हुआ मधुकर को।

'जी हां···! उन्हें आपके दिमाग पर डाह होने लगा था···।'

'आप वह कुर्सी खींचकर बैठ जाइये—खड़े-खड़े कब तक बातें करेंगी आप?'

'थैंक्यू मिस्टर मधुकर···!' आंखों पर कटाक्ष का तीर चढ़ाकर रिबेला बोली—'मेरे पैर कभी थकते नहीं···आपकी मेहरबानी के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया!'

'आप यहां रहती कहां हैं, मिस रिबेला?'

'मैं पास ही एक बंगले में रहती हूं···!' रिबेला बोली—'आप कहां ठहरे हैं?'

'पंजाब होटल में डेरा डाल दिया है—आगे देखा जायेगा।'

'होटल में…?' आश्चर्य से बोली रिबेला—'आपने होटल में डेरा डाला है…? क्यों ? आपको मुझे बताना चाहिए था…।'

'आप क्या मेरी मदद कर सकेंगी ?' पूछा मधुकर ने।

'मैं एक बड़े-से बंगले में अकेली रहती हूं…।' आंखों में शरारत का भाव और होंठों पर मधुर मुस्कान बिखेरती हुई बोली रिबेला—'कभी-कभी अंधेरी रातों में मुझे बहुत डर लगने लगता है। मेरे पास कोई नहीं होता कि कम-से-कम उसकी उपस्थिति से अपना डर दूर कर सकूं…।'

रिबेला की बातचीत में, हाव-भाव में, चाल-ढाल में आकर्षण एवं माधुर्य था, जिससे मधुकर की म्लान मुखाकृति प्रफुल्लित हो उठी।

'अगर आपको मेरे साथ रहने में कोई एतराज न हो तो मेरा बंगला हाजिर है मिस्टर मधुकर…!' रिबेला के स्वर में आग्रह के साथ-साथ अगाध स्नेह था, जिससे मधुकर उसी दिन शाम को होटल से अपना सब सामान समेट कर रिबेला के घर चला आया। कुछ ही देर की संगति से मधुकर जान गया कि रिबेला मधुर स्वभाव की लड़की है। सौन्दर्य उसका जितना उज्ज्वल है, उससे कहीं अधिक उज्ज्वल है उसका हृदय।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब मधुकर की नींद टूटी तो उसने देखा कि रिबेला पहले ही उठ चुकी है और स्टोव के पास बैठी हुई अपने हाथ से चाय तैयार कर रही है।

'आप चाय बनाने का कष्ट क्यों कर रही हैं ?'

'क्योंकि नौकर के हाथ की चाय आपको अच्छी न लगेगी…।' रिबेला ने कहा—'बम्बई में तो आपकी वाइफ़ आपके लिए चाय तैयार करती रही होंगी। है न ?'

'जी नहीं !' मेरी शादी अभी नहीं हुई है !' मधुकर बोला।

'ओह…!' रिबेला के कपोल आन्तरिक प्रसन्नता से आरक्त हो उठे।

मधुकर आधा घण्टे बाद गुसलखाने से नहा-धोकर बाहर आया तो चाय मेज पर तैयार थी। दोनों साथ-साथ चाय पीने लगे।

'आप बहुत मीठी चाय बना लेती हैं…।' मधुकर ने रिबेला के मुख की ओर देखते हुए कहा।

'आपके पास शीरीं जबान है, इसलिए चाय मीठी लग रही है···!' मधुर मुस्कराहट के साथ रिबेला बोली—'वरना चाय तो नमकीन बनी है···।'

'नमकीन···!'

'जी हां! आपके चेहरे की तरह···!' मधुर हंसी हंस पड़ी रिबेला। दन्त-पंक्तियां अनारदाने की तरह बिखर पड़ीं।

उस दिन खाना भी रिबेला ने अपने हाथों से ही बनाया। मगजबिरयानी और पराठे तैयार किये थे। तारीफ कर-करके खूब खाया मधुकर ने।

आफिस का समय हुआ तो रिबेला ने अपने ही हाथों से उसे कमीज पहनाई, टाई बांधी और कोट पहनाया। ब्रश लेकर मधुकर का जूता साफ किया और उसे उसके पैरों में चढ़ा दिया। मधुकर रोकता ही रहा, मगर रिबेला ने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

आज रिबेला का स्नेहिल व्यवहार देखकर मधुकर को अपनी मां की याद हो आई। उसकी मां भी इसी तरह उसकी देख-रेख करती थी।

धीरे-धीरे दिन सरकते गये। रिबेला ने मधुकर के हृदय में अपना एक खास स्थान बना लिया। मधुकर यह जान न सका कि पश्चिमी सभ्यता में रंगी यह ऐंग्लो-इण्डियन युवती उस जैसे काले आदमी से क्या चाहती है?

'एक बात पूछूं मिस्टर मधुकर?' रिबेला दबी जबान से बोली।

'पूछिये न···!'

'ठीक जवाब मिलेगा···?'

'मैं गलत जवाब नहीं देता, मिस रिबेला···!'

'आपने किसी को प्यार किया है···?'

'···' रिबेला के इस प्रश्न पर चौंक पड़ा मधुकर।

मेरा मतलब यह है कि आप अपनी शादी के बारे में कुछ विचार रखते हैं या नहीं···?'

'क्या कीजियेगा जानकर, मिस रिबेला! वे दुःखभरी कहानियां हैं। न दुहराया जाना ही अच्छा है···।' कहकर मधुकर ने एक दुःखपूर्ण दीर्घ श्वास ली।

'मेरा मतलब आपको दुःख पहुंचाना नहीं था, मिस्टर मधुकर ! मैं माफी चाहती हूं···।' रिबेला ने असीम प्यार से मधुकर के कन्धों पर अपना हाथ रख दिया। दोनों के शरीर एक-दूसरे के एकदम पास आ रहे—'मुझे आपसे पूरी हमदर्दी है। अगर मेरे जरिये आप अपने पुराने गम को भूल सकें, तो मैं आपके लिए सब-कुछ करने को तैयार हूं···।'

'शुक्रिया, मिस रिबेला !' मधुकर ने कहा।

रिबेला के प्यारे अधर मदहोशी से तड़फड़ा रहे थे। मदहोशी में यह भी भूल गई कि उसे 'तुम' नहीं 'आप' कहना चाहिए।

'मधुकर ! मेरी ओर देखो···।' विह्वल स्वर में बोली रिबेला—'मुझे हुक्म दो, मैं तुम्हारा सारा गम अपने सीने में समेट लूंगी···तुम्हारा सारा दुःख अपने दिल में भर लूंगी !'

और रिबेला ने मधुकर को अपनी फूल-सी बांहों में कस लिया।

'डियर मधुकर···' रिबेला के होंठ जैसे युग-युग से प्यासे हों, मधुकर के होंठों पर बैठे तो बैठे ही रह गये।

मधुकर की अजीब दशा थी···चाहकर भी रिबेला को उसने अपने से दूर नहीं किया।

रिबेला की फूल-सी बांहें उसे चारों ओर से घेरे थीं—उसके आतुर अधर मधुकर के होंठों का आलिंगन कर रहे थे—बेहोश-सी हो रही थी रिबेला। सहसा ही सजग होकर मधुकर ने धीरे से उसे अपने से अलग किया और कहा—'मिस रिबेला···!'

'डियर मधुकर···!' रिबेला विह्वल स्वर में बोली।

'अपने को सम्हालो, मिस रिबेला !' मधुकर ने रिबेला को सचेत करते हुए कहा—'मैं दुःखावेग में स्वयं को भूल चुका था, ऐसी हालत में तुम्हारे व्यवहार ने मुझे और भी दुःखी कर दिया। अपने हृदय को नियन्त्रित करो, मिस रिबेला ! इन्सान जो कुछ चाहता है वह उसे नहीं मिलता और जो कुछ उसे मिलता है वह उसे नहीं चाहता···।'

रिबेला चुपचाप खड़ी थी। उसका आवेश दूर हो चुका था।

□ □

जाते-जाते सूर्य भगवान समुद्र की सपाट छाती पर मुस्करा रहे थे। समुद्र की लोल लहरें, रक्तिम किरणों का आलिंगन कर शान्त लेटी थीं। मेरीन ड्राइव से लेकर चौपाटी तक का सारा दृश्य देखते ही बनता था। यों तो प्रतिदिन ही इस स्थान पर हवाखोरों की भीड़भाड़ रहती ही है, परन्तु आज रविवार होने के कारण ऐसा लगता था, जैसे सारी बम्बई ही वहां उमड़ पड़ी हो।

दर्शनीय दृश्य उपस्थित हो गया था—रंग-बिरंगे दुपट्टे, कुर्ती और सलवार—दिल लुभाने वाले फ्राक, ब्लाउज और स्लीपर—इठलाती बलखाती हुई कमर, उन्नत उरोज, पाउडर से पुते गाल, लिपस्टिक से रंजित होंठ, युवकों की तलाश में घूमती हुई खूबसूरत तितलियों की टोलियां—उनके पीछे गुंजार करते हुए मानव-भ्रमर—मदभरे नयनों में अगम प्यास लिए, पुष्ट वक्षस्थलों पर जवानी का भार लादे मदहोश छोकरियां—

बम्बई नगरी की सारी सुन्दरता जैसे वहां एकत्रित हो गई थी।

ऐसा प्रतिदिन होता था यहां। जब सूर्य रंजित प्रदीप के पीछे लुप्त होकर, भयावने अन्धकार को समुद्र के वक्ष पर नृत्य करने का अवसर देता था, तो उस अन्धकार में कितने ही तड़पते हुए दिलों के अरमान अपनी प्रेमिकाओं का आलिंगन पाकर खिल उठते थे।

भूमि का वह पतला-सा भाग, जो मेरीन ड्राइव के सिलसिले के बाद दूर तक समुद्र में चला गया है, रात्रि के समय प्रेमियों की लीला-भूमि बन जाता था। आज रविवार होने के कारण दिनेश भी इधर घूमने चला आया था। फुलपैण्ट की जेब में हाथ डाले लीलाभूमि की लीलायें देख रहा था।

इतने में ही एक युवती हांफती हुई उसके सामने आकर बोली—'मुझे बचाइये बाबू साहब! इन गुण्डों से बचाइये।'

दिनेश की दृष्टि पीछे गई तो कुछ दूर पर उसने तीन शहरी गुण्डों को देखा, जो उस युवती की ताक में खड़े थे और अब उसे दिनेश से बातें करते देखकर, दूसरी ओर देखने लगे थे।

'क्या बात है, मिस ?' दिनेश ने युवती से पूछा।

युवती एक सुन्दर साड़ी और ब्लाउज पहने थी। आकृति बहुत ही आकर्षक थी।

'ज्योंही मैं होटल से निकली, ये शोहदे मेरे पीछे पड़ गये और व्यंग कसने लगे। एक ने तो मेरा हाथ पकड़ लिया और दूसरे ने गन्दी बात कह डाली—तब से ये बराबर मेरे पीछे हैं···।'

'आप किस होटल में ठहरी हैं···?' पूछा दिनेश ने।

'मरीना होटल में···।' बोली युवती।

मरीना होटल मिन्ट रोड पर एक ऐसा होटल था, जहां सौन्दर्य का व्यापार होता था। रुपयों के ठीकरों से भोली जवानियां खरीदी जाती थीं।

'आप मरीना होटल में कब से टिकी हैं ?'

'अभी आज ही तो मैं बम्बई आई हूं···।' युवती बोली—'बोरी बन्दर पर एक दलाल मिल गया और मुझे उसमें टिका गया। मैं इस शहर से सर्वथा अनभिज्ञ हूं···।'

'आपने मरीना होटल में ठहर कर अच्छा नहीं किया, मिस···।' दिनेश बोला—'अच्छी जगह नहीं है वह। तभी ये शैतान आपके पीछे पड़े हैं···।'

'मुझे बचाइये बाबूजी ! किसी तरह मेरी मदद कीजिए।'

'आप घबराइये नहीं, आइए मेरे साथ···।' दिनेश बोला। उसने एक टैक्सी बुलाई। दोनों उस पर जा चढ़े।

'मिण्ट रोड, मरीना होटल !' दिनेश ने ड्राइवर को आज्ञा दी।

'आपको मैं किस नाम से पुकारूं ?' दिनेश ने पूछा।

युवती असमंजस में पड़कर थोड़ी देर तक चुप रही। फिर एकाएक बोली—'आप मुझे लालिमा कहकर पुकार सकते हैं···।'

'मिस लालिमा ! क्या आप आपना परिचय बताने का कष्ट करेंगी ?'

युवती पुनः विचार में पड़ गई। बोली—'क्या करेंगे मेरा परिचय जानकर, महाशय ! एक दुखिया समझकर आप मेरी सहायता कीजिए।'

'आप दुखिया हैं···।' आश्चर्य हुआ दिनेश को।

'जी हां ! दुखिया ही समझिये। मैं बिलकुल निराधार हूं। बम्बई रोटी की तलाश में आई···।'

'कुछ पढ़ी-लिखी हैं आप···?'

'जी, हाईस्कूल पास हूं···।'

'ओह···! तब आप नहीं घबराइये···!' दिनेश बोला, 'मैं यहां एक बैंक में क्लर्क हूं। बैंक के प्रोप्राइटर मेरे चाचा लगते हैं। मैं उनसे कहकर आपको कोई जगह दिला दूंगा···।'

'धन्यवाद···!' लालिमा कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोली।

मरीना होटल आ गया। दोनों उतर पड़े। टैक्सी का भाड़ा दिनेश ने चुका दिया। दोनों सीढ़ियां चढ़ने लगे।

'आप किस कमरे में ठहरी हैं···?'

'नम्बर तीन में···!' लालिमा ने कहा।

'आप आपने कमरे में चलें, मैं मैनेजर से मिलकर आता हूं।' दिनेश उस होटल में, रूप की खोज में अक्सर आया करता था और होटल का लम्बा-तगड़ा पंजाबी मैनेजर, उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में फंसकर उसका दोस्त बन गया था।

मैनेजर के पास गया तो उसने देखा, वह शराब के नशे में चूर हो तीन छोकरियों को बगल में बैठाये गप-शप करने में व्यस्त है।

'नम्बर तीन में तो अच्छा शिकार टिका है, मैनेजर साहब···!' बोला दिनेश।

'ओह दिनेश बाबू···!' मैनेजर बोला—'आओ, आओ क्या वह तुम्हें पसन्द है···?'

'जी हां ! बहुत···।'

'तो कितना देना चाहते हो ?'

'जो मांगो···।'

'देखो···।' मैनेजर बोला—'शिकार नया है—फैमिली गर्ल है। दाम ज्यादा लगेगा···।'

'कोई परवाह नहीं···।' दिनेश ने कहा।

'दो सौ···।'

'दे सकता हूं···मगर एक शर्त पर···!' बोला दिनेश।

'क्या है वह शर्त···?'

'प्रातःकाल मैं उसे अपने घर ले जाऊंगा—चार रोज वह वहां रहेगी···चार सौ दूंगा इसके लिए।'

'मंजूर है···।'

'यह लीजिए पच्चीस रुपये एडवांस—बाकी कल दोपहर को···।'

'जाइए···।'

दिनेश लालिमा के कमरे में आया।

'क्या हुआ···?' पूछा लालिमा ने।

'आज ही ले चलने से शक हो जाएगा उस शैतान को···' दिनेश ने कहा—'बड़ी लम्बी रकम का लालच दिया है उसे।'

'कितना···?'

'चार सौ रुपये···!' दिनेश ने कहा—'मगर मैं इतना मूर्ख नहीं हूं। पच्चीस रुपये पकड़ा आया हूं, शेष के लिए बच्चू हाथ मलेंगे।'

'परन्तु हम लोग रहेंगे कहां?'

'इसी कमरे में···।'

'पलंग तो एक ही है···।' लालिमा ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

'कोई बात नहीं···आप पलंग पर सो जाइयेगा और मैं आराम कुर्सी पर!'

'जी नहीं—आप जैसे परोपकारी व्यक्ति को मैं नीचे नहीं सोने दूंगी। आप पलंग पर और मैं आरामकुर्सी पर सो जाऊंगी···।'

'जैसे आपकी इच्छा···।'

रात के दस बज चले थे। होटल में रूप का बाजार गर्म हो रहा था। दिनेश पलंग पर जा लेटा और थोड़ी देर बाद सो गया। परन्तु लालिमा आरामकुर्सी पर लेटी हुई जागती रही। उसे नींद ही नहीं आ रही थी। हृदय में उसके भय समाया हुआ था।

उफ! कितनी भयानक जगह है यह! उसका कलेजा धड़क रहा था। डर से कांपती हुई वह आरामकुर्सी पर बैठी थी।

इतने में ही पास के कमरे से किसी छोकरी के चिल्लाने की करुण आवाज आई और लालिमा का बदन भय से सिहर उठा।

'ठीक से बैठो···चुपचाप! नहीं तो छुरा भोंक दूंगा···।'

कोई बगल वाले कमरे में कह रहा था।

'नहीं-नहीं मुझे जाने दो—मुझ पर रहम करो—मुझे न लूटो···।' भयभीत हिरणी की तरह कोई युवती गिड़गिड़ा रही थी।

'नहीं मानेगी तू···?' किसी पुरुष का कठोर स्वर था।

'मुझ बेबस की लाज न लो···।' कहकर वह रो पड़ी।

इसके बाद जोर से एक तमाचे की आवाज, पलंग पर जोर से गिर जाने का धमाका और फिर युवती की चीख सुनाई पड़ी।

लालिमा ने दौड़कर दिनेश को जगाया।

'मुझे डर लग रहा है···।' लालिमा ने डरी आवाज में कहा।

'आप मेरे पास पलंग पर बैठ जाइये···घबराइये नहीं···।' दिनेश ने उसे सांत्वना दी।

और तब दोनों रात भर एक ही पलंग पर जागते हुए बैठे रहे।

दिनेश का कलुषित हृदय न जाने क्यों लालिमा की दयनीय दशा देखकर पसीज उठा था। कलुषता दूर भाग गई थी। दिनेश का व्यवहार देखकर वह कृतज्ञता के भार से दबी जा रही थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल दिनेश लालिमा को अपने यहां ले आया।



मधुकर पूना चला गया तो जैसे कला की सारी सुख-शान्ति उसके साथ चली गई। आफिस में निर्जीव मशीन की तरह काम करती वह, और शाम को बंगले पर आकर पड़ रहती। घूमना-फिरना, सिनेमा जाना, हंसकर बोलना, सब-कुछ जैसे वह भूल गई थी।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल कला की अन्यमनस्कता से अनभिज्ञ नहीं थे। सतत प्रयत्न कर रहे थे कि यह उदासीनता दूर हो जाए, परन्तु असफल रहे। दिनेश ने भी कला के प्रति कई बार स्नेहपूर्ण सहानुभूति दिखाई थी, परन्तु कला ने कड़े शब्द कहकर उसका स्वागत किया था। फिर भी कला के इस

व्यवहार से दिनेश तनिक भी असन्तुष्ट न हुआ था।

एक दिन कला को आफिस में अकेली देखकर दिनेश उसके पास आया था और विनीत शब्दों में उसने कहा था—'एक बात पूछूं, मिस कला?'

'पूछो...।' अन्यमनस्क हो कला बोली थी।

'आपकी दशा दिन पर दिन चिन्ताजनक होती जा रही है...।' कहा था दिनेश ने—'मुझे अत्यन्त खेद है कि आपके दुःख का कारण मैं बना। आप जानती हैं मिस कला! कि इन्सान के दिल में सहन-शक्ति की भी एक सीमा होती है। उस दिन मधुकर का बर्ताव मेरी सहन शक्ति की सीमा का अतिक्रमण कर गया था और इसी कारण मुझे सेठजी के पास जाना पड़ा था। आज मुझे अपने उस कार्य के लिए हार्दिक पश्चाताप है। मैं आपसे माफी चाहता हूं!'

'धन्यवाद...!' कला ने कहा था और दिनेश चुपचाप सर झुकाकर चला गया था। उसकी बातों से कला को महान आश्चर्य हुआ था।

उसके प्रायः एक सप्ताह बाद—एक दिन!

जबकि कला अपने आफिस में बैठी हुई मधुकर के विषय में सोच रही थी, तो प्यून ने एक पत्र लाकर उसके सामने रख दिया।

पत्र मधुकर का था। बहुत लम्बा पत्र था। उसमें लिखा था—।

प्रिय कला...! तुम मुझसे अप्रसन्न हो , क्योंकि दो महीने बाद आज तुम्हें पत्र लिख रहा हूं। मुझे आशा है कि तुम मुझे इस आलस्य के लिए अवश्य क्षमा कर दोगी।

तुमसे बिछुड़कर जब मैं पूना आया, तो दिल ही नहीं लगता था। भाग्य बलवान था कि प्राइवेट सैक्रेटरी मिस आइडा रिबेला ने मुझे सम्हाला, अन्यथा मैं तो बीमार पड़ गया होता। कोई स्थान रहने के लिए न मिल सकने के कारण मुझे विवश होकर आइडा के साथ रहना पड़ा। रिबेला बड़े अच्छे स्वभाव की युवती है। उसने मेरी सहायता करने में और मेरी प्रसनन्ता के लिए अपनी प्रसन्नता की बलि चढ़ा देने में कभी आगे-पीछे नहीं देखा है।

महीनों व्यतीत हो गये। मेरा जी न जाने क्यों तुम्हें देखने

के लिए व्यग्र रहने लगा है, परन्तु करूं क्या ? विवश होकर रह जाता हूं। इसी बीच मुझे एक दिन बुढ़िया दादी की याद आई, जिसके ममत्व की चर्चा मैं तुमसे कई बार कर चुका हूं। बम्बई आते समय मैं दादी से बराबर पत्र लिखते रहने की प्रतिज्ञा कर आया था, परन्तु व्यस्त रहने के कारण मैं उसकी सुध एक-दम भूल बैठा था।

दादी की याद आते ही मुझे अपने ऊपर बहुत क्रोध आया। जो बुढ़िया दादी मेरे लिये बहुत-कुछ करने को प्रस्तुत रहती थी, उसी के साथ मैंने विश्वासघात किया। मेरा हृदय ग्लानि से भर उठा। दादी को एकबार देखने की लालसा तीव्र रूप से जाग्रत हो उठी।

इधर मेरा पूना में मन नहीं लग रहा था, अतः एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर जाने की सोची।

छुट्टी मिल गई और मैं कानपुर चल पड़ा। रेलगाड़ी पर सोचता जा रहा था कि मुझे देखकर बुढ़िया दादी कितनी खुश होगी ?

वह मेरी बलैया लेगी, मेरा मस्तक चूमेगी और फिर इतने दिन तक लापता रहने के कारण खूब डांटेगी-फटकारेगी !

जब मैं इक्के से अपने दरवाजे पर उतरा, तो मैंने देखा कि मेरे कमरे में आज भी छोटा-सा ताला बन्द है। दादी का दरवाजा खुला था। दादी अन्दर थी और भीतर से किसी बालक के रोने की आवाज सुनाई पड़ रही थी।

दादी कह रही थी—'चुप रह रे छोकरे ! रोता क्यों है ? चार महीने का ही है अभी, परन्तु रोता है ऐसा कि सारा घर हिलाये दे रहा है···चुप रह ! तेरी मां तेरी ममता त्यागकर चली गई तो क्या···? मैं तो हूं ? अच्छा हुआ वह निगोड़ी यहां से भाग गई। भगवान ने मेरा बुढ़ापा काटने के लिए एक बच्चा तो भेज दिया। चुप रह ! तू बड़ा होगा तो मैं तुझे पढ़ाऊंगी, वकील बनाऊंगी, तब तू बहू लायेगा और बहू मेरी नाक में दम करेगी···।'

'दादी···!' मैंने पुकारा और दादी हड़बड़ाती हुई बाहर भागी आईं।

मैंने देखा, उनकी गोद में चार-पांच महीने का एक बच्चा है।

'मधु···! मेरा मधुकर···!'

मुझे देखकर दादी इतनी प्रसन्न हुईं कि हर्ष से उनकी आंखों में आंसू आ गये। मैंने आगे बढ़कर उनके पैर छुए।

'आ गया तू निर्मोही···?' दादी ने कहा—'भला खोज-खबर तो ली इस बुढ़िया की। मैं तो सोच रही थी कि अब तू मेरी जिन्दगी में लौटकर नहीं आयेगा···!'

'पर मैं तो आ गया दादी···!'

'हां रे हां! आया है, सो तो मैं भी देख रही हूं···!' दादी कहने लगीं—'अब तो अंग्रेजी बाबू बन गया है। कोट-पतलून से तो पहचान में भी नहीं आता अब!'

'यह बच्चा किसका है, दादी···?' पूछा मैंने।

'सब-कुछ दरवाजे पर ही पूछ लेगा या भीतर भी पैर रखेगा? अभी तो आया है, भीतर चलके पांव पखार, पानी पी ···तब सब बताऊंगी।

मैं भीतर आया। दादी ने हलुआ बनाकर मुझे खिलाया। फिर पास आकर बैठ गईं।

'अब तू बहुत बदल गया है···?' दादी बोलीं—'बम्बई रहता है न? एक चिट्ठी भी नहीं लिखी वहां से। सोचता था कि लिखेगा तो बुढ़िया पता जान जायेगी और दौड़ी चली आयेगी तुझे तंग करने···।'

'यह बात नहीं दादी···।' मैंने कहा।

'देख, यह बच्चा तुझे पसन्द है?'

'हां दादी! बहुत सुन्दर है यह बच्चा···!' मैंने हाथ बढ़ाकर उस गोरे-गोरे शिशु को गोद में ले लिया।

मेरी गोदी में वह नन्हा-सा खिलौना खेलने लगा। उसे देखकर न जाने क्यों हृदय में एक अव्यक्त वेदना उठ खड़ी हुई।

'यह बच्चा किसका है, दादी···?' पूछ बैठा मैं उत्सुकतावश।

'बड़ी लम्बी कहानी है रे, मधु···!' दादी बोलीं—'तू सुनना चाहता है, तो सुन ले···।'

दादी ने मुझे एक लम्बी कहानी सुनाई। उसका सारांश इस प्रकार है—एक शाम जबकि सूर्य की सुनहली किरणें पश्चिमाकाश पर विलीन हो चुकी थीं तो दादी किसी काम से

अपने दरवाजे के बाहर निकलीं। उन्होंने देखा कि उस सीढ़ी पर, जो मेरे कमरे के सामने है, कोई विक्षिप्त युवती अस्त-व्यस्त-सी पड़ी है। दादी ने उससे पूछा तो उसने बताया कि वह एक अभागिन दुखिया है। देखने में वह भले घर की लग रही थी।

दादी प्रारम्भ ही से दीन-दुखियों के प्रति स्नेहिल रही हैं। उन्होंने उस युवती को अपने यहां रख लिया। युवती गर्भवती थी। एक महीने बाद उसके गर्भ से उसी शिशु का जन्म हुआ। लगभग दो महीने तक वह युवती दादी के पास रही। इसके बाद एक दिन जाने कहां चली गई, अभागे शिशु को दादी के पास छोड़कर। दादी ने भी सोचा कि अच्छा ही हुआ—एक लड़का उनके मनोरंजन के लिए उन्हें मिल गया।

'एक बात कहूं, दादी !' मैंने दिल मजबूत करके कहा।

'कहता क्यों नहीं···?'

'इतनी ही देर में न जाने क्यों इस बच्चे के प्रति प्रगाढ़ ममता उमड़ आई है मेरे हृदय में···।'

'बच्चा बहुत सुन्दर है न, इसीलिए···।' दादी ने कहा।

'मैं इसे अपने साथ ले जाऊंगा, दादी···!' मैं बोला—'वहां इसके लिए एक धाय रख लूंगा। वह इसका लालन-पालन करेगी···।'

'तू था, सो चला ही गया, अब इस लड़के को भी ले जाना चाहता है···?' दादी ने झिड़की दी।

'तुम इसका ठीक से लालन-पालन न कर सकोगी, दादी ! मेरे पास रहेगा, तो आदमी बन जायेगा···।'

दादी मेरे हठ को जानती थीं। बोलीं—'जैसा मन चाहे वैसा कर। मैं इन्कार करूंगी तो तू मानेगा नहीं···।'

आज पांच दिन से कानपुर में हूं। बच्चा मुझसे बहुत हिल-मिल गया है। दादी ने उसे साथ ले जाने की अनुमति दे दी है। मैं परसों यहां से पूना प्रस्थान करूंगा। बच्चे को साथ ले जाऊंगा।

अब तुम्हें देखने के लिए तबीयत बेचैन है। अपने हमदर्द को मैं भूला नहीं हूं, कभी भूल भी नहीं सकता।

तुम अपने पिताजी से कहकर मेरा तबादला बम्बई करा दो, यही मेरी आकांक्षा है। तुम्हारे साथ रहने से मुझे बहुत सुख

मिलता है और तुम इस सुन्दर बच्चे को देखकर बहुत प्रसन्न होगी, ऐसी मुझे आशा है।

व्यर्थ की बातें लिख-लिखकर इतना कागज खराब कर डाला, परन्तु यहां मुझे और कौन-सा काम है।

तुम्हारा—मधुकर

कला ने पत्र को अपनी जाकेट की व में रख लिया और वह मधुकर के तबादले के लिए अपने पिता से परामर्श करने उनके आफिस-रूम में जाना ही चाहती थी कि चपरासी आ पहुंचा।

'दिनेश बाबू एक मिस साहिबा के साथ आये हैं···।' चपरासी बोला—'आपसे मिलना चाहते हैं···।'

'भीतर भेज दो उन्हें···।' कला ने कहा।

चपरासी गया, तो दूसरे ही क्षण दिनेश ने लालिमा के साथ वहां प्रवेश किया। एक क्षण तक वे दोनों सौन्दर्य-प्रतिमाएं एक-दूसरे की ओर देखती हुई, आंखों का भाव पढ़ती रहीं—फिर हाथ उठाकर लालिमा ने कला को अभिवादन किया।

कला ने उसे बैठने का संकेत कर दिया।

'क्षमा कीजियेगा···।' दिनेश कला से बोला—'मैं आपको कुछ कष्ट देने आया हू। आशा है आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान देंगी। ये हैं मिस लालिमा—एक असहाय नारी···! अगर आप कृपा कर इन्हें कोई काम दे सकें तो मैं चिर-कृतज्ञ रहूंगा, साथ ही मिस लालिमा भी···।'

'आप लोग मेरे साथ आइये···।' उठती हुई कला बोली और अपने पिता के आफिस की ओर चल पड़ी। दिनेश और लालिमा भी उसके पीछे-पीछे चले।

राय साहब सेठ बिहारीलाल अपने ऑफिस में, कुर्सी पर बैठे हुए पाइप का कश खींच रहे थे। कला उनके पास वाली कुर्सी पर जाकर बैठ गई। दिनेश और लालिमा खड़े रहे।

'क्या है कला···?' पूछा सेठजी ने।

'ये बैंक के स्टाफ में भर्ती होना चाहती हैं, पिताजी···!' कला ने लालिमा की ओर संकेत कर दिया।

राय साहब सेठ बिहारीलाल ने चुभती दृष्टि से लालिमा की ओर देखते हुए पूछा—'आपका नाम···?'

'लालिमा···!' धीरे से कहा उसने।

'कहां तक पढ़ी हैं आप ?'

'[illegible]ग तक···'

सेठजी कुछ सोचने लगे। फिर कला से बोले—'कला ! इनका अपाइन्टमेंट दिनेश के डिपार्टमेंट में कर दो···।'

कला ने एक कागज पर कुछ लिखकर लालिमा को दे दिया और बोली—'इसे लेकर आप करेण्ट एकाउन्ट डिपार्टमेंट के हेड क्लर्क के पास जाइये। वह आपको आवश्यक कार्य की सूचना दे देगा···।'

दिनेश और लालिमा चले गए। कला चुपचाप बैठी रही। सेठजी ने एक बार कला की ओर देखा, पुनः सर नीचा कर लिया। कुछ सोचने लगे थे वे। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपना सर ऊपर उठाकर पूछा—'कुछ कहना चाहती हो कला ?'

'जी पिताजी !' जमीन पर दृष्टि गड़ाये ही कला ने कहा —'आप नाराज तो न होंगे···?'

'नहीं···! तुम निस्संकोच अपने मन की बात कह सकती हो···।'

'मैं यह कहना चाहती हूं कि मधुकर का अपराध क्या इतना बड़ा था कि उन्हें बम्बई अब बुलाया ही नहीं जा सकता···?' कला रुद्ध कण्ठ से बोली—'मधुकर ने अपराध भले ही किया हो, मगर मैंने क्या अपराध किया था, पिताजी ?'

सेठजी जानते थे कि अपराध किया था मधुकर ने, परन्तु सजा भुगत रही है कला—उन्हें मालूम था कि बिना मधुकर के कला आजकल उदास रहती है।

'क्या उसका तबादला फिर से यहां नहीं हो सकता ?' पुनः पूछा कला ने।

'हो जायेगा अगले सप्ताह···।'

सुनकर कला पूर्णमासी के चांद की तरह खिल उठी। कहीं भीतर का मनोभाव प्रकट न हो जाये, इसलिए कला ने दूसरी ओर मुख कर लिया।

□ □

लालिमा ने बैंक का काम बहुत मनोयोगपूर्वक करना प्रारम्भ किया और कुछ ही दिनों में वह अपनी नम्रता, मिलनसारिता एवं कार्यकुशलता से बैंक के स्टाफ में प्रसिद्ध हो

गई।

दिनेश और लालिमा दोनों पास-पास बैठते थे। दिनेश तो दिन भर में कई बार इधर-उधर घूमने चला जाता काम की चिन्ता छोड़कर, परन्तु लालिमा सदैव अपने कार्य में रत रहती और अपनी कुर्सी छोड़कर तभी उठती थी, जब किसी पेपर पर मैनेजिंग प्रोप्राइटर या मैनेजिंग डाइरेक्टर आदि के हस्ताक्षर कराने होते थे।

लालिमा दिनेश के डेरे पर ही रहती थी। दिनेश ने उसे अलग से दो कमरे दे रखे थे। खाना दोनों साथ-साथ खाते थे। वह दिनेश को बहुत मनाती थी, क्योंकि वही उसका सहायक और हितू था। वह दिनेश के कलुषित अन्तःकरण से सर्वथा अनभिज्ञ थी।

और दिनेश के हृदय में आजकल विचारों की अजीब उथल-पुथल मची हुई थी। उसका दिल लालिमा के सौन्दर्य-पान के लिए तरस रहा था। चाहता था वह कि इस सुन्दरी युवती को अपनी बनाकर अपने दिन सुनहले और रातें रंगीन कर ले।

परन्तु अपनी कलुषित भावना के लिए, जब-जब वह लालिमा के सामने आता, तो जैसे उसकी जबान पर ताला लग जाता—जैसे उसके दिल को कुरेद-कुरेदकर कोई उसका कालिख निकाल देता—जैसे लालिमा के चेहरे के सरल भाव उसे अपनी वासना को भूल जाने को बाध्य कर देते और वह बिना कुछ कहे हुए ही लौट जाता।

अपने दुर्भावना-ग्रस्त हृदय की इस कमजोरी पर दिनेश ने अत्यन्त क्षुब्ध हो, कई बार क्रोध में आकर अपना सर पीट लिया था।

दिनेश और लालिमा सदैव साथ-साथ घूमने जाते, सिनेमा देखते, चाय पीते, बातें करते और भिन्न-भिन्न विषयों पर वाद-विवाद करते। लालिमा खूब प्रसन्न थी। शुरू-शुरू में रहने वाली उसके मुख की उदासीनता अब प्रसन्नता में बदल गयी थी। दिनेश के रूप में उसे एक अनोखा सहायक मिल गया था, जो उसके लिए सब-कुछ करने को तैयार था। इसलिए ऑफिस में भी लालिमा से किसी को बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

लालिमा अपूर्व सुन्दरी थी। उसके अंग-अंग सुडौल और

आकर्षक थे। आंख की काली पुतलियों में शराब का सागर लहराता था, पुष्ट वक्षस्थल किसी के वियोग में व्याकुल-से लगते थे—आतुर अधर, गुलाब की लालिमा को समेट कर और भी लाल हो उठे थे। जब-जब दिनेश इन विशेषताओं पर दृष्टिपात करता उसकी वासना भयंकर रूप से भड़क उठती, परन्तु हृदय की कमजोरी उस वासना को दबोच बैठती।

हृदय की इस कमजोरी को दूर करने के लिए उसने एक 'बार' में जाकर खूब शराब पी। लड़खड़ाता हुआ जब वह घर पहुंचा, तो रात के दस बज गये थे। नौकर-चाकर सब अपने-अपने घर चले गये थे। घर में लालिमा अकेली थी।

दिनेश ने दरवाजा खटखटाया, तो लालिमा ने झट दरवाजा खोल दिया। वह डगमगाता हुआ उसकी ओर बढ़ा।

'प्रियतमे !' वह बड़बड़ाया। सहमकर लालिमा पीछे हट गई। समझ गई वह कि दिनेश ने शराब पी है।

'होश में आइये···!' तीखे स्वर में कहा उसने।

'होश में हूं मैं···कुछ नहीं हुआ है मुझे···!' घरघराती आवाज में बोला दिनेश—'इधर आओ लालिमा ! मेरी तितली···!' भय से सिहर उठी लालिमा, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को संयत कर लिया। पास-पड़ोस का कोई व्यक्ति देख न ले, इसलिए आगे बढ़कर उसने दरवाजा बन्द कर दिया। दरवाजा बन्द करके ज्योंहीं वह पीछे घूमी कि दिनेश ने उसे पकड़ लिया। लालिमा के सुपुष्ट कोमल अंग थोड़ी देर के लिए दिनेश के सीने से जा लगे।

लालिमा ने जोर लगाकर किसी तरह अपने को उसके बन्धन से छुड़ा लिया और बोली—'दिनेश बाबू ! आप तो कभी शराब नहीं पीते थे···आज कैसे और क्यों पी ली···?'

'तुमने मुझे पीने पर मजबूर किया। तुम्हारी···तुम्हारी सुन्दरता ने मुझे पीने पर···पीने पर···।'

लड़खड़ा कर गिर पड़ा दिनेश। नशा तीव्र था। लालिमा का डर कुछ कम हुआ, यह जानकर कि दिनेश को इतना नशा है कि उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा है और वह उसकी कुछ भी हानि करने में असमर्थ है।

यह आगे बढ़ी और उसने दिनेश का हाथ पकड़ कर उठाया।

दिनेश झूमता हुआ उठा, परन्तु फिर लड़खड़ाकर लालिमा की गोद में गिर पड़ा। लालिमा ने उसे अपनी बांहों में कसकर दबा लिया, वरना वह जमीन पर गिर जाता, सर फूट जाता और रक्त की धारा बह निकलती।

उसने संज्ञाशून्य दिनेश को धीरे से चारपाई पर लिटा दिया और रात भर उसके पास आराम-कुर्सी पर बैठी रही, यह सोचकर कि दिनेश का नशा तीव्र है—कहीं नशे की झोंक में कोई दुर्घटना न कर बैठे।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब दिनेश की आंखें खुलीं, तो उसे लगा जैसे आंखें असहनीय बोझ से दबी जा रही हैं और सर पर जैसे कोई हथौड़े की चोट कर रहा है। उसने देखा—आराम-कुर्सी पर लालिमा अस्त-व्यस्त पड़ी है। नींद आ गई है। उफ् ! यह बेचारी रात भर उसकी रखवाली करती रही है।

दिनेश ने धीरे से लालिमा को जगाया। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। देखा तो दिनेश सामने खड़ा था।

बोला—'आपको बहुत कष्ट दिया मैंने, बहुत लज्जित हूं मैं···।'

'आपकी तबियत कैसी है···?' लालिमा ने पूछा।

'मुझे शर्मिन्दा न करें आप ! नशे की झोंक में अगर मैंने कोई गुस्ताखी भी की हो तो क्षमा चाहता हूं। मैं कभी पीता नहीं था, वह तो कल एक मित्र ने हठ करके पिला दी थी···।'

'अब आप कभी न पीयें···।' लालिमा बोली—'सुनती हूं कि यह वह जहर है जो जवान को, दिल को, शरीर के रग-रग को अवश कर देती है···।'

'अब कभी न पीऊंगा···।'

□ □

मधुकर आजकल छुट्टी पर था और पूना के ब्रांच मैनेजर का काम, आइडा रिबेला सम्हाल रही थी।

मधुकर के चले जाने से उसे सूना-सूना-सा लग रहा था। वह अन्यमनस्क भाव से बैंक का सारा कार्य देख रही थी।

ब्रांच का हेड क्लर्क रिबेला के टेम्प्रेरी प्राइवेट सैक्रेटरी का काम कर रहा था। रिबेला उदास थी, क्योंकि मधुकर को गये लगभग दस दिन हो गये और उसने एक पत्र भी नहीं लिखा

था।

'मैडम···! हेड आफिस से यह आदेश-पत्र आया है···!' कहकर उसने एक लम्बा-सा लिफाफा रिबेला के सामने रख दिया। उसे उसने धड़कते हृदय से खोला। खोलकर पढ़ते ही वह मानो आसमान से गिरी। मधुकर का तबादला पूना ब्रांच से बम्बई हेड ऑफिस के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद पर हो गया था और मिस्टर टामसन पूना ब्रांच में मैनेजर होकर आ रहे थे।

रिबेला की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। इधर कुछ ही दिनों में, उसके हृदय में मधुकर की सलोनी आकृति ने उथल-पुथल मचा दी थी और वह न जाने किस संसार में एक सुखद नीड़ बनाने स्वप्न देख रही थी। परन्तु अब उसका वह स्वप्न, स्वप्न मात्र रह गया था। अब उसके पास मिस्टर टामसन आ रहे थे।

कहां सुन्दर जवान मनमोहक मधुकर! और कहां बूढ़े, गम्भीर टामसन···! रिबेला बड़ी देर तक सर नीचा किए हुए मेज के पास बैठी रही। उसे ध्यान ही न रहा कि उसका सेक्रेटरी उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में अब भी खड़ा है।

'आप क्या सोच रही हैं, मैडम···?' सैक्रेटरी ने पूछा।

'ओह···!' रिबेला की तन्द्रा भंग हुई—'कुछ नहीं, कुछ नहीं···तुम इस आर्डर को ले जाकर मिस्टर मधुकर की इनकमिंग रेस्पॉडेंस फाइल में लगा दो···मिस्टर मधुकर शायद आज आ जायेंगे। आज ही उनकी छुट्टी खतम हो रही है···।'

उस दिन उदासी के कारण रिबेला कोई काम न कर सकी। केवल कुर्सी पर बैठी हुई सिगरेट पर सिगरेट फूंकती रही।

पांच बजे वह चिन्ताग्रस्त अवस्था में डेरे पर लौटी, तो उसने देखा कि मधुकर कानपुर से लौट आया है और गोद में एक नवजात शिशु लिये हुए बरामदे में बैठा है। रिबेला सोचने लगी—यह बच्चा किसका है? क्या मधुकर का? परन्तु उसने तो एक दिन कहा था कि उसकी शादी अभी तक नहीं हुई है।

'तुम आ गये, मिस्टर मधुकर···?' पास आकर रिबेला ने चेहरे पर बनावटी मुस्कान लाकर पूछा। परन्तु उसका हृदय जोरों से रो उठना चाहता था।

'हां, अभी दोपहर को आया हूं...।' मधुकर बोला—'तुम तो अच्छी रहीं न...?'

'अब खैरियत पूछ रहे हो...।' रिबेला पास की कुर्सी पर बैठती हुई बोली—'घर से तो एक खत भी न लिखा...?'

'दस दिन बाद ही तो आया हूं—खत लिखने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की मैंने...।' हंसते हुए मधुकर ने कहा—'परन्तु आज तुम इतनी उदास क्यों हो, रिबेला ?'

'होगी कोई वजह—क्या करोगे जानकर...?' बोली रिबेला—'यह बताओ—यह बच्चा किसका है...?'

'मेरा है यह !' मधुकर ने कहा।

'उफ...!' उठ खड़ी हुई रिबेला—'जालिम ! तुमने यह पहले क्यों नहीं बताया...? सितमगर ! तुमने मुझसे दगा क्यों की...? कहा क्यों नहीं कि मैं शादीशदा ...

दौड़ती हुई रिबेला [illegible] चली गई और चारपाई पर गि[illegible] [illegible]ने लगी। सब-कुछ समझ गया मधुकर !

[illegible] कमरे में आकर उसने उसे उठाया और बोला—'रिबेला...! तुम व्यर्थ ही रो रही हो। जब मैं कह चुका हूं कि मैं अब तक अविवाहित हूं तो तुमने यह कैसे विश्वास कर लिया कि यह मेरा बच्चा है...?'

रिबेला ने अश्रुसिक्त आंखें ऊपर उठाईं। पूछा आतुर होकर—'तो क्या यह तुम्हारा बच्चा नहीं...?'

'नहीं...।' मधुकर ने कहा—'यह तो दादी को अनायास मिल गया था। परवरिश के लिए मैं इसे यहां ले आया हूं, थोड़ी देर हुई, इसके लिए एक धाय भी रख ली है।'

रिबेला का चेहरा गुलाब की तरह खिल उठा। रोती हुई आंखें और हंसते हुए गालों ने, रिबेला की सुन्दरता पर चार चांद लगा दिये। मुस्कराते हुए कपोलों का आलिंगन कर, आंखों से लुढ़कती हुई बूंदें मुस्करा उठीं।

'छलिया...! तुमने मुझसे छल क्यों किया...?' मधुकर का हाथ पकड़ते हुए प्रेमपूर्वक रिबेला बोली।

'तुमने सारी बातें तो सुनी नहीं...।' मधुकर ने कहा।

'अब क्या होगा तुम्हारी बात सुनकर, मधुकर ?'

'क्यों ?'

'अब तुम जल्द ही यहां से हेड-ऑफिस जा रहे हो।'

'क्या कहती हो तुम ?'

'अभी आज ही आर्डर आया है···।' कहती हुई रिबेला जैसे पीली पड़ गई।

मधुकर समझ गया कि कला ने अपने पिता से कह-सुनकर उसका तबादला कराया है, क्योंकि उसने कला को पत्र लिख-कर इसके लिए प्रार्थना की थी। वह खुशी के मारे फूला न समाया।

'बड़े खुश हो रहे हो, मधुकर ! बम्बई जाने की बात सु-कर···।'

'खुशी की तो बात ही है···।' मधुकर ने कहा—'वहां जाकर मुझे बडो प्रसन्नता होगी···।'

'किस बात की प्रसन्नता ?'

'वहां कला का साथ रहेगा और···।'

'चुप रहो, मधुकर···।' बिलख पड़ी रिबेला—'तुम निर्मोही हो।'

'कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही हो रिबेला, तुम ?'

'ठीक कह रही हूं मैं···।' रिबेला बोली—'सच बताओ, तुमने अब तक कितनी लड़कियों को रुलाया है ?'

'मैंने ?' आश्चर्यचकित हो उठा मधुकर।

'हां तुमने···! तुम्हारी भोली सूरत ने—तुम्हारी जवानी के आफताब ने—! तुम निर्मोही हो, बड़े जालिम हो, मधुकर !' रो पड़ी रिबेला।

हां, मधुकर निर्मोही है—जालिम है···! उसने निर्मोही बनकर कंचन को बरबाद कर दिया···उसे बेसहारा छोड़ दिया···और उसने शायद प्रेम की आग से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या कर ली···बेचैनी से छटपटा उठा मधुकर—! उफ ! वह निर्मोही है, विश्वासघाती है, छलिया है।

नहीं, नहीं ! वह कुछ भी नहीं है—उसने किसी के साथ नाता नहीं तोड़ा—किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया ! किसी के साथ छल नहीं किया !

कंचन ने शीघ्रता में स्वयं अपना सर्वनाश कर लिया और मधुकर को इस संसार में तड़पने के लिए छोड़ दिया। उसने मधुकर की विवशता पर ध्यान नहीं दिया।

मधुकर की मां मर गई थी, तो यह कैसे सम्भव था

वह जन्मदात्री माँ की ममता भूलकर, प्रेमिका की याद में खोया रहता ? कैसे सम्भव था यह ?

मधुकर को यह विश्वास ही नहीं था कि कंचन इतनी अधीर हो जायेगी और उसे सिसकता छोड़कर, इस संसार से नाता तोड़ जायेगी--परन्तु जीवन के पत्र से कुछ ऐसा भाव झलकता था कि मधुकर को विश्वास करना पड़ा।

जब मधुकर को विश्वास हो गया कि भोली कंचन ने अपने शरीर का अन्त कर डाला, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने उसके दिल को तोड़-मरोड़कर रख दिया हो—वह रोया था—तड़पा था—करुण चीत्कार किया था उसने !

शरीर से निकला प्राण कैसे लौट सकता था ? सोचकर हृदय पर पत्थर रख लिया था मधुकर ने। अन्तराल की अगम वेदना को मूक होकर सहन कर लिया था उसने।

और तब अपना समस्त प्यार उसने कला के चरणों पर रख दिया था। जिसने अन्तर का समस्त प्यार उस पर निछावर-कर, स्वच्छ हृदय से उसका हाथ पकड़ा था, उसे कैसे ठुकरा सकता था वह !

परन्तु आज···! कला से दूर आ पड़ा है वह और उसका सम्पर्क इस नादान युवती रिबेला से हो गया है, जो केवल सहानुभूति से सन्तोष न कर, उसका प्रेम, उसकी जवानी पाना चाहती है।

कैसे हो सकता है यह ? असम्भव ! बिलकुल असम्भव !

'रिबेला···!' मधुकर ने बच्चे को चारपाई पर लिटा दिया और रिबेला की ठुड्डी पकड़कर ऊपर उठाया—'तुमने मुझे गलत समझा है, रिबेला···! मैंने तुम्हें प्यार किया है···मैंने तुम्हें चाहा है, परन्तु तुम्हारी जवानी से कभी प्यार नहीं किया—तुम्हारे यौवन की कभी कामना नहीं की···उस प्यार में, उस चाह में वासना का पुट नहीं था, और न है···!'

'तुम जाओ, मधुकर ! मुझे अकेली छोड़ दो···।' रोते-रोते रिबेला बोली—'मुझे रोकर जी हल्का कर लेने दो···।'

मधुकर बच्चे को उठाकर बाहर चला आया। वह बेचैन हो रहा था, रिबेला की उद्विग्नता देखकर।

दूसरे दिन सूर्योदय हुआ, तो गुलाब हंस पड़े।

रिबेला चाय लेकर मधुकर के पास आई। मधुकर सोते

शिशु को लिये हुए कुर्सी पर बैठा था। अमर की धाय भी जमीन पर बैठी थी। सामान बंधा पड़ा था। मधुकर ने बम्बई जाने की तैयारी कर ली थी। धाय भी अमर को साथ लेकर ही जाने वाली थी।

रिबेला और मधुकर ने साथ ही चाय पी। दोनों चुप थे।

टैक्सी करके सब लोग स्टेशन पर आये। मधुकर अपने छोटे परिवार के साथ 'पूना बम्बई मेल' पर आ चढ़ा। रिबेला प्लेटफार्म पर आंसू भरी आंखें लिए खड़ी रही।

गाड़ी धीरे-धीरे रेंग चली तो मधुकर ने रिबेला का हाथ अपने हाथों में लेकर चूम लिया। रिबेला ने भी ऐसा ही किया।

'तुम्हारी हमदर्दी कभी भूल न सकूंगा रिबेला···!' मधुकर ने कहा—'हमारी तुम्हारी भेंट अक्सर होती रहेगी···।'

'कौन जाने···?' भीगे स्वर में बोली रिबेला—'हम तुम मिले थे, केवल बिछुड़ने के लिए। मैंने दिल दिया था, सिर्फ तड़पने के लिए···!'

गाड़ी चल पड़ी। रिबेला रो पड़ी। कौन समझाये उसके दिल को !

▭ ▭

दिनेश कुर्सी पर कुछ सोचता हुआ बैठा था। उसी समय लालिमा हाथ में चाय की ट्रे लिए हुए वहां आई।

'अरे आप···?' दिनेश बोला—'आपने क्यों कष्ट किया ?'

'इसमें कष्ट की क्या बात है, दिनेश बाबू !' मधुर स्वर में कहा लालिमा ने।

'नौकरानी कहां गई···? नौकरानी आ जाती तो चाय लाकर देती ? आपने क्यों इतनी जल्दी की ? आप मेरे लिये इतना कष्ट न किया करें।'

'मुझे तनिक भी कष्ट नहीं हुआ है, दिनेश बाबू···!' लालिमा ने कहा—'आप चाय पीयें।'

मुस्करा उठा दिनेश—'आप भी बैठिये···।'

लालिमा बैठ गई। दिनेश ने दो प्याली चाय बनाई। एक अपने आगे रख ली और दूसरा लालिमा के आगे सरका दी।

'आप भी पीजिये, मिस लालिमा···!'

'धन्यवाद !' लालिमा ने चाय की प्याली उठाकर अपने अधरों से लगा ली। गरम चाय, मादक अधरों का चुम्बन करती हुई पेट में उतर गई।

'यह क्या'''? उबले हुए अण्डे'''?'

'जी हां'''।' लालिमा ने कहा—'आमलेट जल्दी में नहीं बना सकी। क्षमा करें।'

'कोई बात नहीं'''।' दिनेश ने कहा—'मुझे उबले अण्डे बहुत पसन्द हैं'''आपको ?'

'मुझे भी'''' धीरे से लालिमा बोली—'आज आप आफिस से आये तो कुछ उद्विग्न थे ? आफिस में भी आपको बहुत परेशान देखा था मैंने'''।' लालिमा बोली।

'क्या बताऊं ? इतने दिन तक तो आराम से बीते, मगर अब मेरे रास्ते का कांटा फिर उभर आया है'''।'

'कांटा'''? कैसा कांट'''?' पूछा लालिमा ने।

'मेरा सबसे महान शत्रु इस बैंक का मैनेजिंग डाइरेक्टर होकर पुनः आ गया है'''।' दिनेश ने उत्तर दिया।

'कौन है वह'''? क्या नाम है उसका'''?'

'वह एक भयानक शैतान है'''।' दिनेश बोला—'नाम उसका मधुकर है'''।'

'मधुकर !'

न जाने क्यों चौंक पड़ी लालिमा ! उसका सारा बदन सिहर उठा। चाय की प्याली नीचे गिरते-गिरते बची।

'क्या नाम लिया आपने'''? मधुकर'''!' लालिमा ने पूछा।

'जी, हां ! ठीक सुना है, आपने। उसका नाम मधुकर ही है'''।' दिनेश ने कहा—'मगर आप व्यग्र क्यों हो उठीं ?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं'''!' लालिमा ने दूसरे ही क्षण अपनी भंगिमा ठीक कर ली—'मैं इसलिए व्यग्र हूं'''कि क्या संसार में ऐसे भी आदमी हैं, जो आप जैसे सहृदय व्यक्ति के साथ शत्रुता कर सकते हैं ?'

'हैं क्यों नहीं'''? बोला वह—'इसी मधुकर को देखिए। मेरे खून का प्यासा है वह'''!'

'मधुकर कहां के रहने वाले हैं ?'

'कानपुर का रहने वाला है वह'''।'

'कानपुर का'''!' अस्फुट स्वर निकल पड़े लालिमा के मुख से।

'जी हां'''।' दिनेश बोला—'मेरी उसकी शत्रुता का माध्यम है—कला'''।'

'कला'''? सेठजी की लड़की, कला?'

'हां! मधुकर ने अपना जाल उस भोली लड़की पर फेंक दिया है और वह नादान छोकरी जाल में बुरी तरह फंस गई है। मैं उसका सम्बन्धी हूं, परन्तु वह मेरी परवाह नहीं करती'''

'क्या मधुकर का सेठजी की लड़की से प्रेम-सम्बन्ध है'''?'

'केवल प्रेम-सम्बन्ध ही नहीं'''।' दिनेश दृढ़ स्वर में बोला—'मेरा तो अनुमान है कि वे दोनों जवानी के आवेग में आकर सभ्यता की सीमा का भी अतिक्रमण कर गये हैं'''।'

'उफ्'''!' लालिमा ने चाय की प्याली मेज पर रख दी।

'क्या हुआ, मिस लालिमा'''? क्या हुआ आपको?'

'कुछ नहीं, बाबू! गरम चाय से होंठ जल गए थे'''आप कहते चलिए, रुकिये मत!'

'एक दिन कला के लिए ही मधुकर से मेरा झगड़ा हो गया और मेरी असावधानता का लाभ उठाकर, उसने मेरे चेहरे पर दो घूंसे जमा दिये'''मैंने उस दिन सेठजी से कहकर उसका तबादला पूना करवा दिया था। अब मालूम होता है कि कला ने सेठजी से कह-सुनकर उसे फिर बुलवा लिया है।'

'कब आ रहे हैं, मधुकर'''?' पूछा लालिमा ने।

'कल वह आफिस में आकर चार्ज लेगा'''।' दिनेश बोला—'मगर आयेगा तो आज ही'''।'

दिनेश ने घड़ी की ओर देखा—'इस समय साढ़े सात हो रहे हैं'''।' बोला वह—'बम्बई पूना मेल स्टेशन पर आ गई होगी'''।'

सात बजकर दस मिनट हो गए थे और बम्बई-पूना मेल बिक्टोरिया टर्मिनल पर खड़ी-खड़ी हांफ रही थी। यात्री उतर रहे थे।

सैकेण्ड क्लास के एक डिब्बे से उतरकर मधुकर ने प्लेट-फार्म पर पैर रखा ही था कि कला को देखकर चौंक पड़ा। कला ने भी उसे देख लिया था। हर्षोत्फुल्ल होकर वह उसकी

ओर दौड़ पड़ा। एक युग के पश्चात दोनों ने एक-दूसरे को देखा था, अतः दोनों मदहोश-से हो रहे थे। भूल गए थे वे कि यह स्टेशन है और यहां अन्य परिचित व्यक्ति भी उपस्थित हैं।

'मधुकर···!' कला के मुख से अटकता हुआ स्वर निकला और वह प्रेमातुर हो मधुकर के पैरों पर नत हो गई।

मधुकर ने बहुत ही स्नेहपूर्वक कला को ऊपर उठाया। दोनों कुछ देर तक सुध-बुध खोये-से एक-दूसरे को देखते रहे। सहसा कला की दृष्टि, मधुकर के पीछे गोद में शिशु लिये हुए खड़ी एक अधेड़ स्त्री पर पड़ी।

'यह वही बच्चा है, कला! जिसके विषय में मैंने तुमको अपने पत्र में लिखा था···और यह बच्चे की धाय है···।' मधुकर ने कहा।

'ओह! बड़ा सुन्दर बच्चा है।'

कला ने बच्चे को गोद में ले लिया।

'तुम्हें पसन्द है यह बच्चा, कला···?' पूछा मधुकर ने।

'क्यों नहीं! यह तो बिलकुल तुम्हारे जैसा है···।' कला ने कहा।

'मेरा ही बच्चा है तो होगा किसके जैसा?'

'तुम्हरा बच्चा है···।' कला ने कहा—'बड़े आये हो बच्चे वाले! बच्चे को दूध पिलाना भी जानते हो, या यों ही बच्चे वाले बनते हो···? चलो हटो—बच्चा मेरा है···।'

'अच्छा भई, झगड़ा छोड़ो···।' मधुकर बोला—'आओ, हम-तुम समझौता कर लें···।'

'किस शर्त पर?' कला ने मदिर नयनों से मधुकर की ओर देखते हुए पूछा।

'बच्चा न तुम्हारा और न मेरा···।'

'तब फिर किसका?' पूछा कला ने।

'हम दोनों का!' मधुकर ने कहा और ठहाका मारकर हंस पड़ा।

कला भी हंस पड़ी। हंसी समाप्त होने पर कला ने बच्चे को धाय की गोद में दे दिया और तब सब बाहर आये।

एक टैक्सी की गई और उसने सबको चर्नी रोड पर पहुंचा दिया, जहां मधुकर पहले रहता था। डेरे पर आकर धाय बच्चे की सेवा में लग गई···और एक एकान्त कमरे में, एक पलंग

पर बैठकर मधुकर और कला बातें करने लगे।

कला बहुत प्रसन्न थी, यह देखकर कि मधुकर इस बार उससे दिल खोलकर मिला है—दिल खोलकर बातें कर रहा है।

परन्तु बेचारा मधुकर तो अपने को भुलावा दे रहा था। कंचन को खोकर, उसे कला से सन्तोष करना था और अपने इस सन्तोष से वह अत्यन्त प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहा था।

'कला !' उसने धीरे से कला का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा।

'मेरे मधू !' और वह उसकी गोद में लुढ़क पड़ी।

'कैसी रहीं कला···?'

'तुम कैसे रहे···?'

'तड़पता रहा मैं···!'

'सिसकती रही मैं···!'

उसके अधर बेहोश हो गये, मधुकर के होंठों का आलिंगन कर। थोड़ी देर तक दोनों अपने आपको भूले रहे।

'कला···! मेरी रानी !' मधुकर ने मदहोश आंखों से कला की सलोनी मुखाकृति देखते हुए कहा।

'मधू···! मेरे प्राण···!' कला ने अपनी फूल-सी बांहों का बन्धन दृढ़ करते हुए कहा।

'तुम तो इतने मादक कभी नहीं लगते थे, मधू···!' कला ने कहा—'पूना जाकर तुम अपने अंग-अंग में मादकता भर लाये हो···।'

'मदिरा-पान से ही अंग-अंग में मादकता आती है, रानी ! तुम्हारा यौवन मदिरालय है, उसी ने मुझे मादकता प्रदान की है।'

'यह मदिरालय अब तुम्हारा है, मधू ! और तुम हो इसके अधिष्ठाता···छक कर पीयो, जितना जी चाहे।' कला ने कहा।

युगों की अगम प्यास लिए दो अधर पुनः आपस में जा टकराये।

कमरे की निर्जीव दीवारें, जैसे सजीव हो उठीं। वातावरण शराबी-सा लड़खड़ा उठा।

आज मधुकर पुनः मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर आसीन था।

कला भी उपस्थित थी। काम की फिक्र छोड़कर दोनों आपस में घुल-मिलकर बातें कर रहे थे।

'कल रात को जब मैं देर से बंगले पर पहुंची···।' कला कहने लगी—'तो पिताजी क्लब से वापस आ चुके थे। पूछा उन्होंने कि देर कैसे हुई आने में, तो मैंने कह दिया कि मधुकर के साथ थी···।'

'तब क्या बोले ?'

'मुस्कराकर कहने लगे कि मधुकर तुझे बहुत पसन्द है न···! ब वह हमेशा बम्बई में ही रहेगा। कुछ दिनों बाद, वह भी इसी बंगले में आ जायेगा। मैं बूढ़ा हो चला, अब बैंक का कारबारो तुम दोनों को सौंपकर आराम की जिन्दगी बिताना चाहता हूं···सुनते ही मारे लज्जा के मेरा मुंह लाल हो उठा।'

'काश ! तुम्हारी लज्जा पर निछावर होने के लिए मैं वहां होता···।' मुस्कराकर कहा मधुकर ने।

'अब निछावर हो जाओ···।' मनमोहक भंगिमा से देखती हुई कला बोली।

'तो फिर आओ···!'

'कहां···?'

'मेरे पास···।' मधुकर ने कहा।

'क्यों···?' कला ने पूछा।

'ताकि निछावर हो सकूं···।'

'दूर से ही निछावर क्यों नहीं होते···'

'नहीं, पास से ज्यादा सुख मिलेगा···।'

कहकर मधुकर ने कला को अपने पास खींच लिया और अपने तृषित अधरों को कला के मादक अधरों पर निछावर कर दिया।

'लो हो गया निछावर···।'

'चलो हटो···! यह तो चोरी है।' शोखी से कहा कला ने —'क्यों नहीं पिताजी से कहकर मुझे मांग लेते···?'

'मुझे तो बहुत संकोच मालूम होता है, उनसे कहते

हुए…।'

'कहते हैं, तुम्हारी बात वे अस्वीकार नहीं करेंगे।'

'अच्छा किसी दिन कहूंगा…।'

'किसी दिन नहीं, आजकल में ही कह डालो—मेरी बेचैनी पर रहम करो।' कला बोली।

'मुझे भी कम बेचैनी नहीं है, रानी!'

मधुकर ने प्रेम-विह्वल हो कला को अपने वक्ष से लगा लिया।

'ओह! छोड़ो भी…।' कला अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करती हुई बोली—'पिताजी ने मुझे इस सेफ की ताली देने के लिए बुलाया था। कहा था उन्होंने कि परसों पहली है। उस दिन मधुकर ही स्टाफ को तनख्वाह बांटेगा…मुझे जाने दो…।'

मधुकर ने उसे छोड़ दिया। कला कटाक्ष करती हुई अपने पिता के आफिस-रूम की ओर भाग गई।

मधुकर फाउन्टेनपेन निकालकर एक कागज पर कुछ लिखने लगा।

उसी समय उसके आफिस का दरवाजा खुला और लालिमा ने अन्दर प्रवेश किया। उसका चेहरा न जाने क्यों आवेशमय हो रहा था। पुष्ट छातियों की तीव्र धड़कन, कसे हुए ब्लाउज पर स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। परन्तु मधुकर लिखने में इतना तल्लीन था कि उसने ध्यान ही न दिया कि उसके कमरे में कौन आकर खड़ा है?

उसी समय किसी की पतली उंगलियों ने मधुकर के सामने कुछ कागज रख दिये, और अत्यन्त नम्रतापूर्वक सुरीले स्वर में कहा—'कृपया, इस पर हस्ताक्षर कर दीजिये!'

चौंक पड़ा मधुकर लालिमा का वह स्वर सुनकर, जैसे किसी ने बिजली भर दी हो उसकी रग-रग में। उसने सर उठाकर लालिमा को आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखा। उसकी आंखों के सामने एकाएक अन्धकार छा गया, फिर सैकड़ों सूर्यों का-सा प्रकाश पुंज उदय हुआ, और इसके बाद ही मस्तिष्क में विद्युत-प्रवाह की सनसनाहट दौड़ गई।

'कृपया हस्ताक्षर कर दीजिये…।

ऐसा लगता था, जैसे लालिमा बहुत प्रयत्न करके अपने सम्हाले हुए है।

'तुम···आप···तुम···।' मधुकर ठीक से कुछ बोल न सका।

लालिमा के सौन्दर्य ने उस पर न जाने क्या जादू कर दिया।

'कंचन···!' बड़े प्रत्यन से मधुकर बोला।

'क्षमा कीजियेगा, मेरा नाम लालिमा है—जल्दी से हस्ताक्षर कर दीजिए, मेरे अधीन बहुत काम हैं···।'

'तुम्हारा नाम लालिमा है···? नहीं-नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। मुझे भुलावे में न डालो कंचन! मैं तो समझता था, तुम···तुमने···।'

'आप कैसी बहकी बातें कर रहे हैं···?'

'तुम कंचन हो, मेरी कंचन···!' मधुकर ने लालिमा का हाथ पकड़ लिया। परन्तु मधुकर का हाथ झटक दिया उसने।

'मिस्टर मधुकर···!' तीव्र स्वर में वह बोली—'आप मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं फिर कहती हूं कि मेरा नाम लालिमा है, कंचन नहीं···।'

'कंचन नहीं है तुम्हारा नाम?' भयंकर आन्तरिक पीड़ा से सर पकड़ लिया मधुकर ने—'वही रूप, वही चेहरा, वही स्वर, जरा भी परिवर्तन नहीं—परिवर्तन है तो केवल वेश-भूषा में, फिर भी तुम कंचन नहीं···?' मधुकर बेचैनी से उठकर कमरे में टहलने लगा। फिर एकाएक रुककर बोला—

'मुझे तुमने पहले ही मुरदा बना रखा है, कंचन! अब मुरदे की खाल न खींचो···मुझ पर तरस खाओ।'

मधुकर ने लालिमा का हाथ पकड़कर अपने कलेजे पर रख लिया। बोला—'यहां की धड़कन देखो—यहां की बेचैनी सुनो! तुम चाहे कोई भी हो, थोड़ी देर के लिए कंचन बन जाओ और मेरे हृदय की ज्वाला शान्त कर दो।'

इस बार लालिमा ने अपना हाथ नहीं खींचा। कदाचित, वह यह सोच रही थी कि कैसे समझाये वह इस पागल प्रेमी को, जो न जाने क्यों उसे कंचन समझ बैठा है।

मधुकर की दशा देखकर कोमल-हृदया लालिमा का दिल भर आया और उसके नयन-कटोरों में अश्रु छलछला आये।

लालिमा ने उन्हें तुरन्त पोंछ लिया, उसकी यह क्रिया मधुकर नहीं देख सका।

मधुकर ने लालिमा को चुप देख, उसका कोमल हाथ पकड़ कर अपने होंठों से लगा लिया—और पागलों की तरह चुम्बनों की बौछार करने लगा।

उफ् ! उसने आज तक जिस कंचन को मरी हुई समझा था, वह जीवित है···! परन्तु अब तो जैसे निष्ठुर बन गयी है।

खैर ! चाहे जैसे भी होगा, वह अपनी देवी को प्रसन्न करेगा। लालिमा की चुप्पी से मधुकर को विश्वास हो गया कि यह कंचन ही है। उसने उन्मत्त की तरह लालिमा को अपने पास खींच लिया।

अब मधुकर का व्यवहार लालिमा को असहनीय हो गया।

'अपने को सम्हालिये, मिस्टर मधुकर···!' लालिमा बोली—

'अब तक तो दिनेश बाबू से आपके विषय में सुन ही चुकी थी—आज प्रत्यक्ष देख लिया···।'

हांफने लगी लालिमा। मधुकर सन्न खड़ा रह गया।

'समझ गई कि आपने कंचन नामक किसी लड़की को बरबाद किया है और अब उसे त्याग कर, मुझे बरबाद करने की चेष्टा करने लगे हैं। इसके अतिरिक्त मिस कला के साथ भी आप विश्वासघात कर रहे हैं···।'

'उफ्···!' सर पकड़कर वह कुर्सी पर बैठ गया।

मधुकर की वह दशा देख लालिमा का दिल रो उठा। परन्तु मधुकर का ध्यान उस ओर नहीं गया। वह बेचैन बना कुर्सी पर बैठा रहा। उसका मस्तिष्क चकरा रहा था आंखों के आगे अंधेरे-उजाले की आंख-मिचौनी हो रही थी।

लालिमा के हृदय में पुनः दया का स्रोत उमड़ आया—वह मधुकर की कुर्सी के पास आ खड़ी हुई। मधुकर के सर पर अपना हाथ फेरती हुई बोली—'आपकी तबीयत ठीक नहीं है, मधुकर बाबू···! आप घर जाकर आराम करें···देखती हूं कि आपको ज्वर हो आया है···।'

मधुकर कुछ न बोला—उस भोली नारी का चरित्र उसे बहुत गहन लगा। उसने लालिमा के कागजों को बिना देखे—बिना पढ़े उन पर कांपते हाथों से हस्ताक्षर कर दिये।

'अब आप जा सकती हैं···।' मानो मधुकर की मरी आत्मा ने यह आदेश दिया हो।

लालिमा चली गई। मधुकर ने अपना मस्तक मेज पर दे मारा। सर चोटीला हो गया। रक्त चुहचुहा आया।

दस मिनट बाद कला हाथ में तालियों का एक छोटा-सा गुच्छा लिए आ पहुंची। बोली—'यह लो। यह सेफ की ताली पिताजी ने दी है। इसे अपने पास रखो। सेफ में कुल सत्तर हजार रुपये हैं···।'

मधुकर ने कला से ताली लेकर मेज पर रख दी।

कला ने देखा, मधुकर का हाथ कांप रहा है। उसी समय उसकी दृष्टि मधुकर के भाल पर चुहचुहा आये रक्त पर पड़ी।

'यह क्या हो गया तुम्हें, मधुकर···?' कला एकदम घबरा कर बोली।

'यों ही चोट लग गई···।'

'चलो, जल्दी उठो, पट्टी बांध दूं···।'

मधुकर ने प्रतिवाद नहीं किया और कला के साथ कमरे के बाहर हो गया। दस मिनट बाद मधुकर सर में पट्टी बांधे हुए लौटा। कला भी साथ आयी।

'ताली कहां है, मेज पर नहीं दीखती?···' पूछा कला ने।

'यहीं मेज पर तो थी···?' मधुकर ने कहा।

बहुत खोज करने पर भी ताली न मिली।

तो मधुकर ने सोचा कि शायद उसने ताली कहीं दूसरी जगह रख दी है, और इस समय परेशानी के कारण उसे भूल गया है। तबियत ठिकाने होते ही वह ताली खोज लेगा।

शाम को जब मधुकर और कला बाहर निकले, तो मधुकर ने सुन्दरी लालिमा को दिनेश का हाथ पकड़े हुए जाते देखा। उसका हृदय हाहाकार कर उठा।

□ □

जीवन का दुखमय जीवन, जो कभी हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण था, अब उल्लासरहित हो गया था। कालरात्रि-सा घनघोर अन्धकार छा उठा था उसके चारों ओर···और जीवन अपने उस जिजीविषिकापूर्ण जीवन से व्यथित और शोकमग्न था।

माता को खोकर उसने पिता की सुखमयी गोद का आश्रय लिया था।

और एक दिन जब उसके पिता भी उसे छोड़कर चल बसे तो उसने कंचन जैसी ममतामयी बहन पाकर सन्तोष की सांस ली थी और अपने अस्त-व्यस्त जीवन को सौंप दिया था कंचन को।

अपने उमड़ते हुए दिल पर, कला को ठोकरें खाते हुए देखा था उसने—और तब बहन का अभूतपूर्व स्नेह पाकर उसने वह प्रबल मानसिक आघात भी चुपचाप सहन कर लिया था—परन्तु अन्त में एक दिन वह भी आया, जब वह अपनी लाड़ली बहन को भी खो बैठा—उसके जीवन का वह अन्तिम आधार भी टूट गया।

और तब जिस जीवन ने अपने जीवन की सारी सरसता खोकर भी आंसू नहीं बहाये थे, वह अपनी बहन को खो, फफक कर रो उठा।

जीवन का सारा क्रोध निर्मोही मधुकर पर था—उस मधुकर पर जिसने कंचन के स्वच्छ जीवनाकाश पर मंडराकर विष की बूंदें बरसायी थीं—जिसने एक कोमल बालिका की सारी चंचलता छीनकर, उसे शोक-सागर में गोते लगाने को बाध्य किया था—जिसने सांप बनकर कंचन के अन्तराल में जहर उगला था और जिसने उसे घुल-घुल कर मरने पर मजबूर कर दिया था।

जब-जब मधुकर की याद आती, उसका हृदय उसका खून करने के लिए तड़प उठता। जोरों से हाथ मलने लगता वह—उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे उसके कठोर पंजों के बीच छलिया मधुकर का गला आ पड़ा हो और वह दबा-दबाकर उसे निर्जीव बना रहा है।

जिस दिन कंचन गई, उसी दिन से जीवन बिस्तर पर पड़ा था। उसकी एक टांग टूट गई थी। टूटी हुई टांग के ठीक होने में कई महीने लग गये। जीवन ने कारखाना बन्द कर दिया और हर समय हवेली में बैठा हुआ अपनी गीली आंखें पोंछता रहता।

आज बहुत दिनों के बाद, जीवन छड़ी के सहारे बाग में आया था। टांग उसकी अच्छी हो चुकी थी, पर बिना छड़ी के

सहारे वह चल नहीं सकता था। बाग की रविश पर आराम-कुर्सी के सहारे लेटा था वह।

'बाबू ! चाय लाऊं···?' एक नौकर ने आकर पूछा।

'नहीं···।' सर लटकाये हुए किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न जीवन ने कह दिया।

नौकर चला गया। दूसरा नौकर आया—'बाबूजी ! नाश्ता कर लीजिये···!'

'नहीं !'

थोड़ी देर बाद तीसरा नौकर आया—'सरकार ! नहाने के लिए पानी गर्म हो चुका है···।'

उसने सिर हिलाकर अस्वीकृति प्रकट कर दी।

'भोजन तैयार है, बाबूजी···!' चौथे नौकर ने आकर कहा।

'फेंक दो कूड़े में···।' उसने रोष भरे स्वर में कह दिया और न जाने कब तक बैठा रहा जीवन, उसी चिन्ता में डूबा हुआ।

बाबूजी !' कारखाने के सब मजदूर दरवाजे पर खड़े हैं··· आपका दर्शन चाहते हैं। कहते हैं कि आज कई महीनों से कारखाना बन्द है—अब खुलना चाहिए···।'

'नहीं खुलेगा ! चले जाओ यहां से···।' बिगड़ा जीवन।

'सरकार ! वे कह रहे हैं कि उनके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं···।

'मर जाने दो···मैं भी तो मर रहा हूं।'

जीवन का वह वृद्ध नौकर जिसने जीवन को अपनी गोद में खिलाया था, सर झुकाकर जाने लगा। एकाएक उसे रोक कर जीवन ने कहा—'सुनो रामदास···! देखो मैं मर रहा तो क्या, अपने मजदूरों को मैं नहीं मरने दूंगा···मुनीमजी कहकर सभी को पचास-पचास रुपये दिला दो···।'

'मगर सरकार ! इस तरह आप कब तक उनको रुपये देते रहेंगे ? पहले भी कई बार आप ऐसा कर चुके हैं···।'

'तुम जाओ—जैसा मैं कह चुका हूं, करो···।'

नौकर चला गया। आधा घण्टे बाद वह पुनः आया। उसके हाथ में पहली डाक से आये हुए कई पत्र थे। जीवन ने उदासीन भाव से सब पत्र देख डाले, अन्तिम पत्र देखते ही चौंक

वह, मधुकर की लिखावट देखकर।

उसने खुले हुए पत्र को मोड़कर मुटठी में कस लिया। बिना पढ़े फाड़ना चाहता था वह उस निर्मोही के पत्र को, क्योंकि उसे मधुकर से घृणा थी—उसकी लिखावट तक से घृणा थी।

पत्र को हाथ में लिए कुछ देर वह जाने क्या सोचता रहा, फिर पत्र खोल डाला और पढ़ने लगा—

निर्मोही के जीवन !

बहुत साहस कर तुम्हें पत्र लिख रहा हूं, क्योंकि अपने पिछले पत्र में तुमने जो अप्रसन्नता प्रकट की थी, उसने मुझे भयभीत कर दिया था। इस कारण कई बार तुमसे मिलना चाहकर भी मैं न मिल सका।

तुमको पत्र लिखने की इच्छा होते हुए भी पत्र न लिख सका। परन्तु आज जी कड़ा कर लिखने बैठा हूं। कार्य बहुत आवश्यक है, इसलिए इतना साहस कर सकता हूं। मैं जानता हूं कि तुम मुझसे घृणा करते हो, कदाचित् मेरी बातों पर विश्वास न करो, परन्तु जो सूचना दे रहा हूं, वह सत्य है। कंचन को तुमने और मैंने, दोनों ने ही मृत समझ लिया था, परन्तु वह अब तक जीवित है।

आज मैं पूना से यहां आया हूं और उसे अपने आफिस में देखा है, मैंने। वह मेरे ही बैंक में क्लर्क का काम कर रही है। उसने अपना नाम लालिमा रख लिया है। मैंने उससे बातें करने का प्रयत्न किया लेकिन उसने मुझसे इस तरह व्यवहार किया जैसे वह मुझे पहचानती ही नहीं। वह दिनेश नामक एक पाजी क्लर्क के साथ रह रही है।

मुझे बहुत दुःख है कि मैं तुम्हारे और कंचन के कष्ट का कारण बना। मेरी प्रार्थना है कि तुम पत्र पाते ही यहां चले आओ। मेरा विश्वास है कि चाहे वह सबको भूल जाये, परन्तु अपने भाई को नहीं भूल सकती।

तुम मुझसे भले न मिलो—मगर अपनी बहन के लिए तुम्हारा आना अत्यन्त आवश्यक है—मधुकर तुम्हारा, व्यथित मित्र।

पत्र पढ़ते ही जीवन की निर्जीव रगों में नवीन स्फूर्ति भर उठी।

कंचन का जीवित होना, उसके लिए नवजीवन का मधुर सन्देश था। कंचन जीवित है···उसका मन-मयूर प्रसन्नता से नृत्य कर उठा। उठकर खड़ा हो गया वह। हाथ में छड़ी उठाई और उसके सहारे मचकता हुआ अपने कमरे की ओर बढ़ चला।

'रामदास···? ओ रामदास···?' उसने पुकारा।

'आया सरकार!' बूढ़ा रामदास दौड़ा हुआ आया।

'मेरा सूटकेस कहां है···? उसे ठीक करो···।'

जीवन के चेहरे की सारी उदासीनता लुप्त हो चुकी थी और उस पर प्रसन्नता की लहरें थिरक उठी थीं। रामदास आश्चर्यचकित था। कई महीनों बाद उसने अपने युवा मालिक के मुख पर हर्ष की छाया देखी थी।

'कहीं जाइयेगा क्या सरकार···?' उसने पूछा।

'मुझे बम्बई जाना है—गाड़ी आने में केवल एक घण्टे की देर है···।' जीवन बोला—'तुम खड़े-खड़े मेरा मुंह क्या देख रहे हो? कौन-सी लिखावट पढ़ रहे हो मेरे मुंह पर···?'

'आपका पैर अभी अच्छा नहीं हुआ है, सरकार···!' रामदास ने नम्रतापूर्वक कहा—'ऐसी हालत में आपका जाना ठीक नहीं···।'

'मेरा पैर बिल्कुल ठीक हो गया है···हाथ में छड़ी रहेगी और साथ में तुम रहोगे—बस, मैं बम्बई पहुंच जाऊंगा···जाओ, जल्दी करो!'

और उसी दिन जीवन, हाथ में छड़ी और साथ में रामदास को लेकर बम्बई रवाना हो गया।



कला अत्यन्त व्यथित थी, मधुकर की दुखपूर्ण मुद्रा देखकर। वह चुपचाप सर लटकाये मेज के पास बैठा था। आंखों में छिपे हुए अश्रुकण बाहर आने के लिए तड़प रहे थे। चेहरा एक ही रात में पीला हो गया था।

मधुकर को क्या दुःख है? कला सोचने लगी, परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया। वह कल से मधुकर को दुखोत देख रही है, और उसने मधुकर से कई बार उसकी उदास का कारण भी पूछा है—परन्तु मधुकर है कि बताता ही नहीं!

चुपचाप अपनी वेदना अकेले ही सहन कर रहा है।

क्या कला को उसके दुःख में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं ? क्या कला और मधुकर दो हैं ? फिर मधुकर अपनी वेदना क्यों छिपाना चाहता है ? क्यों नहीं वह कला को भी अपने दुःख का साथी बना लेता, ताकि वह भी उसकी पीड़ा को आधे-आध बांटकर बोझ हलका कर दे ?

कहीं सेफ की ताली खो जाने का तो उसे शोक नहीं है ? परन्तु सेफ की ताली, जो कल मेज पर से खो गई थी, आज वह मेज के नीचे पड़ी हुई मिल गई—फिर क्यों उदास है वह ? क्यों नहीं हंसकर बोलता ? क्यों नहीं कला को भर आंख देखकर मुस्कराता ?

अबोध कला क्या जान सकती थी मधुकर के दुःख का कारण !

मधुकर के हृदय में दुर्दमनीय विचारों का संघर्ष हो रहा था—उसने कला से अपना दिल बहलाया था, उससे प्रेम करने लगा था—कंचन को मृत समझकर और आज कला का मुर्झाया हुआ प्रेम उसके पैरों तले सिसक रहा है और मृत कंचन का निर्जीव प्रेम, सजीव होकर उसके मन-मस्तिष्क में छा गया है।

लालिमा को वह कंचन ही समझ रहा है···और परिस्थितियों की जटिलता में फंसकर वह डूब उतरा रहा है।

लालिमा के कल के व्यवहार ने मधुकर के हृदय को विदीर्ण कर दिया है।

उसने कल मुझे पहचाना ही नहीं···जैसे एकदम भूल गई है मुझे वह···बड़बड़ा उठा मधुकर ! भूल गया कि बगल की कुर्सी पर बैठी कला ध्यानपूर्वक उसकी ओर देख रही है और उसकी हरएक बात सुन सकती है। कला उठकर मधुकर के पास आई। स्नेहपूर्वक उसने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। चौंक पड़ा मधुकर !

'किसने आपको पहचाना नहीं ? कौन आपको भूल गई···?'

'ओह तुम···? कला···! तुम ?' अस्त-व्यस्त स्वर में बोला वह।

'तुम्हें क्या दुःख है, मधुकर···?' कला ने कहा—'मेरी

बातों का उत्तर दो…! तुम्हें कौन-सी वेदना है ?'

'तुम मेरे नजदीक आकर भी मुझसे दूर हुए जा रहे हो, ऐसा क्यों ? मुझे दुःख न दो, रुलाओ नहीं मधू ! अपनी व्यथा प्रकट कर दो और जी हल्का कर लो…।'

आकुल कला ने मधुकर का हाथ पकड़ लिया और सिसक पड़ी। मधुकर की वेदना उस स्नेहपूर्ण स्पर्श और सिसकन से द्विगुणित हो उठी।

'कला ! मेरी कला…!' मधुकर ने सिसकती हुई कला के बेहोश शरीर को अपनी बांहों पर संभाल लिया—'मुझे कोई दुःख नहीं है…।'

'तुम मुझे धोखा दे लो…।' कला ने कहा—'परन्तु अपने हृदय को धोखा मत दो…अपनी आंखों से छल न करो…।'

'मैं किसी को धोखा नहीं दे सकता—किसी से छल नहीं कर सकता, कला…! मुझे कुछ सोचने का अवसर दो !'

कला दुखित हृदय लेकर अपनी कुर्सी पर आ बैठी। उसी समय चपरासी ने वहां प्रवेश किया। बोला—'सेठजी आपको याद कर रहे हैं…।'

मधुकर रायसाहब सेठ बिहारी लाल के आफिस-रूम में आया।

सेठजी उस समय उत्तेजित भंगिमा धारण किए हुए कुर्सी पर बैठे थे। चेहरे पर क्रोधजनित लालिमा छाई हुई थी।

'आपने मुझे बुलाया है, सर…?' धीरे से पूछा मधुकर ने।

'हां…।' रूखी आवाज में बोले सेठजी—'तुम अभी कल ही यहां आये हो और आज तुम्हारी शिकायत मेरे पास आ पहुंची…।'

'कैसी शिकायत ? किसने शिकायत की है, सर…?' आश्चर्य और भयभीत स्वर में पूछा मधुकर ने।

'दिनेश ने तुम्हारी शिकायत की है। उसका कहना है कि कल तुमने उसकी आश्रिता मिस लालिमा के साथ अपमानजनक बर्ताव किया था। उसने यह भी कहा कि तुमने मिस लालिमा का हाथ पकड़ कर बेजा तरीके से अपनी ओर खींचा था…।'

चुप था मधुकर ! वातावरण उसका शत्रु हो गया था।

'मेरी बातों का जवाब दो, मिस्टर मधुकर !' तड़पकर बोले सेठजी।

'मैं बहुत शर्मिंदा हूं, सर···।' धीरे से कहा मधुकर ने।

'शर्मिन्दा हो···।' बोले सेठजी—'शर्म नहीं आई तुम्हें ? डूब नहीं मरे तुम···? एक अपरिचित लड़की के साथ ऐसा करते हुए तुम्हारे पैर नहीं डगमगाये ? कला के साथ विश्वास-घात करते हुए तुम नहीं सहमे ? ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तुम्हारी बुद्धि कुण्ठित हो गई है—तुम्हारी सोचने की क्षमता नष्ट हो गई है। मैं कला का बाप हूं। मैं उसका हृदय परख सकता हूं। कला सबकुछ देख सकती है, परन्तु तुम्हें दूसरों का होते नहीं देख सकती। तुमने उसके कोमल दिल को खिलौना-मात्र समझा है—तुम मेरा सर्वनाश करने पर उतर आये हो···।'

'मुझे क्षमा कीजिये सर !'

'मैंने एक जहरीले सांप को अपनी बेटी के मनोरंजनार्थ पाल रखा था···' बोले सेठजी—'अच्छा हुआ कि मैं उसके डंसे जाने से पहले ही संभल गया···।'

आवेग में आकर सेठजी कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और व्यग्रतापूर्वक कमरे में टहलने लगे।

'मिस्टर मधुकर !'

'जी···!'

'कल प्रातःकाल दस बजे तुम्हें अपना चार्ज देना होगा। मैं तुम्हें बरखास्त करता हूं···।'

'जैसी इच्छा आपकी···!' गम्भीर स्वर में बोला मधुकर।

'अब तुम जा सकते हो···।'

लौट पड़ा मधुकर। अपने आफिस में आकर हैट सर पर रखा और कमरे से बाहर जाने लगा तो दौड़कर कला लिपट गई उससे। बोली—'कहां जा रहे हो, मधू ? क्या कहा पिताजी ने ?'

मधुकर का हृदय फट पड़ना चाहता था। उसने अपने को कला के बन्धन से छुड़ाया और बाहर निकल गया। फूट-फूटकर रो पड़ी कला। दौड़ी हुई अपने पिता के कमरे में आई। रुआंसे स्वर में बोली—'आपने उनसे क्या कहा, पिताजी ? आपने उनको क्यों चले जाने दिया···?'

'चुप रहो…।' गरज पड़े सेठजी—'सांप सुधा-रस नहीं जहर उगलता है, इतना कहना ही पर्याप्त है। तुम अपना दिल सम्हालो…!'

'पिताजी…!'

'सर कहो…।' तड़पकर बोले सेठजी—'तुम इस समय ऑफिस में हो, घर पर नहीं…जाओ, अपना काम देखो…।'

चली गई कला अगम वेदना का भार लिये।

▭ ▭

अपने कमरे में बैठे हुए रायसाहब सेठ बिहारीलाल प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न थे। कला और मधुकर के सम्बन्ध ने उनके मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया था।

सेठजी जानते थे कि आज उन्होंने मधुकर को जो फटकार बताई है, उससे कला को महान दुःख हुआ है और वह जब से ऑफिस से आई है, अपने कमरे में पड़ी हुई बराबर रो रही है। उसकी सिसकियों का स्वर यहां तक आ रहा है।

कहीं कला यह सुन ले कि मधुकर ने उसके साथ विश्वासघात किया है, तो वह अपनी जान ही दे बैठेगी।

सेठजी को आज दिनेश की बातें याद आ रही थीं, जो उसने कुछ दिन पहले चलती हुई कार में उनसे कही थीं और उन्होंने फटकार बताकर उसे अपनी कार से उतार कर उसका अपमान किया था—आज वही बातें एकदम सत्य हो रही थीं और…और वह मधुकर जिसे उन्होंने अपने कलेजे का टुकड़ा समझ रखा था, आस्तीन का सांप निकला।

सेठजी ने पाइप में वरजीनिया तम्बाकू भरकर जलाया। जोर का कश खींचा और शून्य में धुएं का रिंग बनाकर छोड़ दिया। चिन्ताग्रस्त अवस्था में कमरे के फर्श पर इधर-उधर चहलकदमी करने लगे, परन्तु वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके।

इतने में नौकर ने दिनेश के आने की सूचना दी।

दिनेश आया तो उसने देखा कि सेठजी के भाल पर चिन्ता की रेखायें उभरी हुई हैं और वे गम्भीरतापूर्वक कमरे में टहल रहे हैं।

दिनेश चुपचाप कमरे के अन्दर आ रहा और एक आराम

कुर्सी सेठजी के पास खिसका कर अत्यन्त विनम्र बनकर बोला—'बैठिये चाचाजी···!'

सेठजी उसका मतलब समझ गये। वे जान गये कि दिनेश इस समय कोई आवश्यक बात कहने आया है। वे आराम कुर्सी पर धीरे से बैठ गये। पाइप का एक कश खींचा और गम्भीर स्वर में पूछा उन्होंने—'क्या है दिनेश···?'

'चाचाजी···!' दिनेश बोला—'आज बहुत साहस करके आपसे मिलने आया हूं···उस दिन आप अकारण ही मुझ पर रुष्ट हो गये थे। कृपा है भगवान की, कि आज आपके सामने मधुकर का सत्य रूप प्रकट हो गया···।'

'तुम ठीक कह रहे हो, दिनेश···! उस दिन मैंने तुम्हारी बातों में ईर्ष्या की झलक पाई थी, इसलिये मैं तुम पर रुष्ट हुआ था···अब मधुकर के कपट-व्यवहार ने मुझे सावधान कर दिया है···।'

'वह भंवरा है, चाचाजी···! कितनी ही कलियों का पराग लूट चुका है वह···।' दिनेश ने कहा—'मैं तो उसे कॉलिज से ही जानता था, इसलिए आपको और कला को मैंने सावधान करना चाहा था—परन्तु आप लोगों ने मेरी बातों का उल्टा ही मतलब समझा, आज मैं उससे मिलने उसके डेरे पर गया था तोवह वहां नहीं था। उसकी धायने मुझे उसके कमरे में बैठाकर प्रतीक्षा करने के लिए कहा—सहसा उसकी मेज पर मुझे ऐसे कागजात मिल गये, जिन्हें आपको दिखलाना मैंने आवश्यक समझा। इसलिए उन्हें आंख बचाकर उठा लाया हूं, केवल आपको दिखाने के लिए···यह है उसकी पर्सनल डायरी···।'

दिनेश ने एक छोटी-सी डायरी सेठजी के हाथों में पकड़ा दी।

सेठजी उसे उलट-पलटकर देखने लगे।

'इसे पढ़ने पर आपको यह मालूम होगा कि मधुकर ने अपने अभिन्न मित्र जीवन की बहन कंचनमाला को प्रेम का सुनहला स्वप्न दिखाकर उसका सतीत्व नष्ट किया—और अन्त में वह कंचन को छोड़कर कला के साथ यहां चला आया। वह नारी आत्मग्लानि सहन नहीं कर सकी और उसने आत्महत्या कर ली।'

सेठजी ने क्रोध से अपना सर हिलाया। दिनेश ने फिर

कहना शुरू किया—'उसके बाद उसने मिस कला पर अपना जाल फैलाना शुरू किया और वह सफल भी हो जाता, यदि उससे मेरा झगड़ा न हो गया होता। आपने उसका पूना ट्रान्सफर कर दिया। पूना जाकर भी वह अपनी हरकत से बाज नहीं आया और मिस आइडा रिबेला को···।'

'क्या कहते हो दिनेश?' सेठजी ने आश्चर्य से दिनेश की ओर देखा।

'आप सब कुछ इस डायरी में पढ़ सकते हैं, चाचाजी···!' दिनेश बोला—'वह स्वयं उसके हाथ की लिखी हुई डायरी है···।'

'कमीना कहीं का···!' सेठजी ने मधुकर को गाली दी।

पूना से आकर जब उसने मिस लालिमा को मेरे साथ देखा तो उस पर रीझ गया और उसका अपमान करने का दुस्साहस कर बैठा···!' दिनेश कहता गया—'उसके विश्वासघात के और भी कितने ही कारनामे हैं जिन्हें मैं नहीं जानता। आजकल उसने एक बच्चे को पाल रखा है। कहता है कि वह उसके दादी की धरोहर है, परन्तु मेरा ख्याल है कि वह उसकी किसी प्रेमिका का पाप-पुत्र है···।'

जोरों से दांत पीस लिए सेठजी ने और डायरी के पन्ने उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ देर तक नीरवता रही।

'एक बात उसके विषय में और है, चाचाजी···!'

'कहो!'

'बात बहुत भयानक है और मुझे भय है कि आप मुझसे रुष्ट न हो जायें···।'

'तुम सारी बातें साफ-साफ सुना दो, दिनेश···!'

'आपने परसों उसे सेफ की ताली दी थी न?'

'हां···।' बोले सेठजी।

'उसमें कितने रुपये थे···?'

'सत्तर हजार···! कल पहली तारीख है न? मैंने उसे वे रुपये क्लर्कों को बांटने के लिये सौंपे थे···।' सेठजी ने कहा।

'मगर चाचाजी! अब वे रुपये सेफ में नहीं हैं···।'

'क्या हुए सब रुपये···?' चौंककर पूछा सेठजी ने।

'मधुकर ने सब रुपये चुराकर, अमर के नाम से पर्शियन बैंक में जमा कर दिये हैं···।'

'अमर कौन···?'

'वही उसका छोटा-सा बच्चा···!' दिनेश बोला—'पंजाब एशियन बैंक की पासबुक भी मैं उसकी मेज पर से उठा लाया हूं अभी आज ही तो उसने रुपये जमा किये हैं···।' दिनेश ने जेब से पासबुक निकालकर सेठजी को पकड़ा दी।

'वह आपको बरबाद कर देना चाहता है चाचाजी···!' दिनेश कहने लगा—'सोचा था उसने कि वह आपसे रुपये चोरी चले जाने का बहाना कर देगा और तब आप पहली तारीख का वेतन न बांट सकेंगे और आपको दूसरे बैंक से उधार लेना पड़ेगा—इस तरह आपके बैंक की सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी···।'

सेठजी ने ध्यान से पासबुक देखी और तब चिल्ला उठे—'नीच कहीं का— मैं उसे अभी पुलिस में देता हूं···।'

'धैर्य रखिये, चाचाजी···!' दिनेश ने आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए कहा—'सोच-समझकर काम कीजिये। पहले कल दस बजे उससे चार्ज ले लीजिये, तब उसे पुलिस को सौंपिये···।'

'ठीक है···।' सेठजी बोले—'अब तुम जाओ—मेरा दिमाग परेशान हो रहा है—मैं एकान्त चाहता हूं···।'

दिनेश उठ खड़ा हुआ। बोला—'मैंने आपको सावधान कर देना अपना कर्तव्य समझा—अब आप जानें। मगर एक बात का ध्यान रखियेगा, चाचाजी! कि किसी पर मेरा नाम प्रकट न हो···।'

दिनेश चला गया, तो सेठजी मधुकर की डायरी ध्यान-पूर्वक पढ़ने लगे। लगभग दो घण्टे तक वे उस डायरी को पढ़ते रहे और अन्त में उन्होंने उसे क्रोधावेश में दूर फेंक दिया।

उस रात—सेठ बिहारीलाल सो न सके। पलंग पर लेटे, तो दुर्दमनीय विचारों ने उन्हें सोने नहीं दिया। वे कमरे में टहलते रहे और पाइप का कश खींचते रहे।

दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने नाश्ता भी नहीं किया और कपड़े पहनकर बैंक जाने को तैयार हो गये। कार में आकर वे बैठे ही थे, कि उन्हें कोई भूली हुई बात याद हो आई। वे कार पर से उतर कर कला के कमरे की ओर बढ़े।

कला भी म्लान मुखाकृति लिये हुए बैंक जाने की तैयारी

कर रही थी। सेठजी ने देखा—कला की आँखें लाल हो रही हैं, जैसे वह रात भर रोती रही है···और कला ने देखा—सेठजी का चेहरा अत्यन्त गम्भीर है जैसे शान्त समुद्र का वक्ष तूफान आने के पहले गम्भीर हो जाता है।

'कला···!' आज तुम बैंक न जा सकोगी···।'

'क्यों!···?'

'यह मेरी आज्ञा है···।'

'और कला को कुछ भी पूछने का अवसर न देकर सेठजी लौट पड़े। बाहर आकर कार में बैठ गये। कार चल पड़ी।

बैंक के चपरासी सेठजी को इतने सबेरे आया हुआ देखकर आश्चर्य-चकित रह गये। सहमकर वे एक-दूसरे से काना-फूसी करने लगे। उस समय तक बैंक में केवल कुछ जूनियर क्लर्क ही आये थे और कोई नहीं आया था। केवल साढ़े नौ बजे थे उस समय।

सेठजी लिफ्ट द्वारा ऊपरी मंजिल पर आये और ऑफिस में जाने की बजाय मधुकर के ऑफिस में घुस पड़े। कमरा नीरव था। सेठजी ने ताली निकाली। वह 'मास्टर की' थी। बैंक के सब सेफ उस ताली द्वारा खोले जा सकते थे। सेठजी ने मधुकर का सेफ खोल डाला और दिनेश की बातें साकार होकर उनके नेत्रों के समक्ष नृत्य कर उठीं।

सेफ में एक भी रुपया न था। सेठजी ने सेफ बन्द कर दिया और अपने ऑफिस में आये। ऑटोमैटिक फोन उठाकर पुलिस स्टेशन से कुछ बातें कीं और पुनः रिसीवर रखकर पाइप पीने लगे···तो मधुकर छली और विश्वासघाती ही नहीं, चोर भी है।

और मधुकर···! उसकी दशा विचित्र थी। कल शाम से उसे अपनी डायरी नहीं मिल रही थी। धाय ने बताया था कि कोई सज्जन उससे मिलने आये थे, जिसे उसने कमरे में ही बैठा दिया था।

मधुकर की समझ में ही नहीं आया, कि उससे मिलने आने वाला कौन था और उसकी डायरी क्यों चुरा ले गया।

दस बजने पर जब बैंक जाने को तैयार होकर बाहर निकला, तो एक टैक्सी से कला को उतरते देखा। उसका चेहरा मुर्झाया हुआ था।

वह मधुकर के सामने चली आई।

मधुकर ने उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

'मेरा कहना मानो, मधुकर…!' कला कांपते स्वर में बोली—'तुम आज बैंक न जाओ…।'

'क्यों…?'

'कल रात दिनेश पिताजी से मिलने आया था—बड़ी देर तक पिताजी से न जाने क्या-क्या बातें करता रहा, आज पिताजी अत्यन्त गम्भीर हो रहे हैं। मुझे बैंक न जाने की आज्ञा दे गये हैं…आज उनका इरादा भयानक मालूम हो रहा है। मधु! तुम बैंक न जाओ…।'

'मुझे जाना ही होगा, कला…! मधुकर बोला—'मुझे आज अपना चार्ज देना है। न जाने से मेरे मुख पर अमिट कालिख पुत जाएगी…।'

'चाहे जो कुछ भी हो, मैं तुम्हे जाने नहीं दूंगी आज…।' कला मधुकर का हाथ पकड़कर भीतर घसीट ले गई और निहोरा करती हुई बोली—'तुम्हारा मुझ पर रंचमात्र भी स्नेह हो तो आज बैंक जाने का इरादा छोड़ दो!'

'यह नहीं हो सकता, कला…! तुमने मेरा सब कुछ लूटकर अब ईमान मत लूटो…सेठजी को मेरे ईमान पर सन्देह हो जायगा। अभी परसों ही उन्होंने मुझे सत्तर हजार रुपये दिये हैं…।'

'तुमने कभी भी मेरा कहना नहीं माना, मेरे मधू! आज मेरा कहना मान जाओ। मैं जानती हूं, पिताजी का क्रोध भयंकर होता है…।'

कला ने मधुकर का आवेशपूर्ण शरीर अपनी भुजाओं में कस लिया, परन्तु मधुकर उसे धीरे से अलग करता हुआ बोला—'अपने को सम्हालो कला!'

और शीघ्रतापूर्वक वह कमरे से बाहर निकल गया।

अभी वह ऑफिस में कुर्सी पर आकर बैठा ही था कि सेठ बिहारी लाल आ पहुंचे—'मुझे अपना चार्ज दो, मिस्टर मधुकर!'

कुर्सी पर बैठते हुए गम्भीर स्वर में सेठजी ने कहा।

'ऑल राइट सर…!' कहकर चुपचाप मधुकर उन्हें चार्ज देने लगा। सब कागजात ब्योरेवार उनके सुपुर्द कर दिये और

पॉकेट से ताली निकालकर वह सेफ की ओर बढ़ा। सेफ का पल्ला खोला। अकस्मात् वह चौंक पड़ा। भय से शरीर कांपने लगा। हृदय की धड़कन तीव्रतर हो गई। सेफ खाली था। नोट हवा बन गये थे।

'क्या है···?' तीव्र स्वर में पूछा सेठजी ने।

'रुपये···! नोट···! सर···!' मधुकर की जबान कांपने लगी थी···पैर पेड़ की टहनी बन गये थे।

'कहां हैं रुपये···? कहां हैं नोट···?' कड़ककर पूछा सेठजी ने।

'इसी में थे, सर···। अभी परसों मैंने गिनकर रखे थे।'

'तो क्या हुए सब नोट···?'

रायसाहब कुर्सी पर से उठकर मधुकर के सामने आ खड़े हुए। क्रोध से उनका सारा शरीर कांप रहा था। मधुकर सर नीचा किये चुपचाप खड़ा था।

'विश्वासघाती! आस्तीन के सांप···!' गरज पड़े सेठजी —'ईमानदारी का ढोंग रचने वाले जहरीले नाग! बता, रुपये क्या हुए···? बोलता क्यों नहीं? साफ-साफ क्यों नहीं बताता कि रुपये तूने पर्शियन बैंक में जमा कर दिये हैं···।'

'क्या कहते हैं आप, सर?' मधुकर ने देखा सेठजी की ओर।

'ठीक कह रहा हूं मैं···!' तड़पकर बोले सेठ बिहारीलाल —'मैं तेरी सारी करतूत जान चुका हूं। तूने सत्तर हजार रुपये चुराकर अपने छोकरे अमर के नाम, पार्शियन बैंक में जमा कर दिये हैं। तेरी पासबुक मेरे हाथ लग गई है···।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आता, सर! कि क्या कह रहे हैं आप···?'

'ऐसे समझ में नहीं आयेगा···।'

लपककर सेठजी ने कॉलिंग बैल पर उंगली रखी।

'मैं सब प्रबन्ध पहले ही कर चुका हूं।' कहा उन्होंने।

दूसरे ही क्षण पुलिस इन्स्पेक्टर के साथ कई पुलिसमैन वहां आ पहुंचे। मधुकर के हाथों में हथकड़ी पहना दी गई। वे हाथ, जो कभी घड़ी के कोमल पट्टों से सुशोभित होते थे, अब कठोर लौह-बन्धन में तड़फड़ा उठे। मधुकर के नेत्रों में आंसू आ गये! गला अवरुद्ध हो गया। कुछ कहना चाहा उसने,

मगर कह न सका।

निरीह व्यक्ति जब हर तरह से अपने को अशक्त पाता है, तो सिवाय आंसू बहाने के और कर ही क्या सकता है···?

'मैं अपराधी नहीं हूं, सेठजी···!' मुश्किल से उसके मुख से ये शब्द निकल सके।

'चुप रह कमीना कहीं का···।' गरज पड़े सेठजी—'दोजखी कुत्ते ! अपने को निरपराध कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती···!'

मैंने कुछ भी नहीं किया है—मेरा कुछ भी अपराध नहीं···।'

'मां-बाप से बिछुड़ा हुआ अनाथ युवक, निरीह बालक-सा रो पड़ा। गाल आंसुओं से सिक्त हो गये।

'अपने निरपराध होने का सबूत अब अदालत के सामने देना···।' क्रुद्ध स्वर में सेठजी ने कहा।

'मैंने अपना रक्त-मांस सुखाकर आपकी सेवा की थी उसका पुरस्कार आपने मेरे हाथों में हथकड़ी डलवा कर दिया है···खैर, कोई बात नहीं। ईश्वर की यही इच्छा थी। एक दिन आप ईमानदार नौकर के लिए तरसेंगे···।'

'ऐसे ही थानेदार होते तो यह काला मुंह लिए यहां खड़े न रहते···।' सेठजी ने गरजकर कहा—'ईमानदार व्यक्ति इस तरह कोरी बातों से अपना ईमान प्रदर्शित नहीं करते ! वे अपमान सहन करने के बदले मर जाना पसन्द करते हैं।'

सिर नीचा किये हुए मधुकर, सिपाहियों के पीछे चल पड़ा। उसकी आंखें ऊपर नहीं उठ रही थीं।

बैंक में खलबली मच गई थी। सभी का हृदय मधुकर की गिरफ्तारी से पसीज उठा था। खुशी थी केवल एक व्यक्ति को—वह था दिनेश !

जब मधुकर सड़क पर आया, तो उसकी दृष्टि एक ओर खड़ी सुन्दरी लालिमा पर पड़ी। वह चौंक पड़ा, उसके नयनों में उमड़ आये आसुओं का सागर देखकर।

पुलिस की लारी बाहर खड़ी थी। पुलिस से घिरा हुआ मधुकर उस पर जा बैठा। लारी दौड़ चली। चमचमाती हुई सड़क, लारी के पहियों का आलिंगन कर चीत्कार कर उठी।

नारी चली गई तो लालिमा ने अपने नेत्र पोंछे और अपनी मेज के पास आ बैठी।



राय साहब सेठ बिहारीलाल की सारी मानसिक शान्ति नष्ट हो चुकी थी। वे अपने कमरे में बेचैनी से टहलते हुए पाइप पी रहे थे।

संध्या का समय था। थोड़ी देर पहले ही रक्तरंजित प्रदीप पश्चिमाकाश पर मुस्करा कर अदृश्य हुआ था। सेठजी के अन्तराल में संघर्ष मचा हुआ था। यद्यपि आज मधुकर को पुलिस के हाथों सौंपकर एक बार उन्होंने सन्तोष की सांस ली थी—परन्तु मानसिक आवेग शान्त होते ही उनका हृदय उन्हें धिक्कार उठा था।

मधुकर! जिसने उनके बैंक की उन्नति के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी थी—जिसने अपनी कुशाग्र बुद्धि द्वारा नई स्कीम निकालकर, सागर बैंक लिमिटेड को बम्बई का अग्रगण्य बैंक बना दिया था—उस मधुकर को उन्होंने जेल के सींखचों में बन्द करवा दिया? निर्दयी बनकर उसे पुलिस के हाथों सौंप दिया? सेठजी का हृदय अपने प्रति प्रबल घृणा से भर उठा। उन्होंने पाइप मेज पर रख दी और आराम-कुर्सी पर सर पीछे झुकाकर लेट गये। उनके नेत्रों के समक्ष, गिरफ्तारी के समय की मधुकर का अश्रुपूर्ण मुखाकृति स्पष्ट हो उठी।

उफ्! वह निर्दोष था—उसकी मुखाकृति कह रही थी कि वह निर्दोष है—उसके आंसू कह रहे थे कि वह निरपराध है—उसकी चीत्कार कह रही थी कि वह निश्छल है—फिर क्यों उन्होंने उसके साथ निर्दयता का व्यवहार किया? क्यों उसके आंसुओं की अवहेलना कर उसे बन्दी बनवाया? क्यों उसकी चीत्कार ठुकरा, उसे जेल भिजवाया?

हाथ मलने लगे सेठ बिहारीलाल! अपनी हथेलियों से अपनी आंखें बन्द कर लीं उन्होंने। थोड़ी देर तक वे इसी अवस्था में बैठे रहे। फिर एकाएक आरामकुर्सी पर से उठ खड़े हुए और पाइप जलाकर पीते हुए पुनः कमरे में टहलने लगे।

'नहीं...! वह निर्दोष नहीं था—वह निरपराध नहीं था—

उसने बैंक के सत्तर हजार रुपये चुराकर [illegible] बैंक में जमा किये। उसने कला को प्रेम जाल में फंसाकर अपनी अन्य प्रेमिकाओं की भांति, उसे भी मृत्यु के मुख में झोंक देना चाहा।

चोरी के प्रमाणस्वरूप उसकी पासबुक साक्षी है—उसके विश्वासघात के लिए उसकी हस्तलिखित डायरी गवाह है और ये दोनों वस्तुएं सेठजी को दिनेश द्वारा प्राप्त हुई थीं, जिसे कभी सेठजी प्रथम श्रेणी का धूर्त समझते थे और जिसने मधुकर की पोल खोलकर सेठजी की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी।

मधुकर दोषी है···अब उसे जेल में चार साल तक चक्की पीसते हुए अपराध का दण्ड भुगतना पड़ेगा।

सेठजी ने क्षणिक निश्चय द्वारा अपने मस्तिष्क को शान्ति प्रदान की और पुनः आरामकुर्सी पर आ बैठे। फोन का रिसीवर उठाकर इन्होंने कोई नम्बर मिलाया और तब अपने अटार्नी जनरल मिस्टर एन० कुलकर्णी को मुकद्दमे की ठीक से पैरवी करने का आदेश देकर रिसीवर रख दिया।

उसी समय कला ने उनके कमरे में प्रवेश किया। सेठजी ने देखा कि उसकी भंगिमा उदीप्त है, आंखें रोते-रोते सूज आई हैं। चेहरा व्यथा से मलीन हो रहा है।

'पिताजी···!' कला सेठजी के निकट चली आई।

'आओ बेटा···!' सेठजी के स्वर में वह मिठास थी, जो बकरे का गला काटने के पहले कसाई के स्वर में होती है—जो हिरण फंसाने के पहले शिकारी की वंशी-ध्वनि में होती है।

कला सेठजी की मेज का कोना पकड़कर खड़ी हो गई।

'मैं आज आपसे कुछ बातें करने आई हूं, पिताजी···!' कला का स्वर करुण था, फिर भी उसमें हल्की-सी तीक्ष्णता थी।

'क्या बात करना चाहती हो, बेटी···?' सेठजी ने पूछा—'बैठ जाओ···।'

'नहीं ऐसे ही ठीक हूं···!' कला ने कहा—'मैं आपसे यह पूछने आई हूं कि आपने सब-कुछ जानते हुए भी, मेरे रास्ते में कांटे क्यों बिछाये···? मेरी दुनिया क्यों उजाड़ी···? मेरा बसेरा क्यों नष्ट किया···? आपने आंखें रहते हुए भी वास्त-

विकता की ओर से आंखें क्यों मूंद लीं ? क्यों मेरे हरे-भरे बाग में विनाशकारी पतझड़ का वातावरण उपस्थित किया…? आपने मेरे दिल पर निष्ठुरतापूर्वक आघात क्यों किया…? क्यों मेरे लिए रोने-तड़फने की भूमिका तैयार की…? ओह ! आपने मेरा सुहाग लूट लिया…।'

'कला…।' सेठजी तीव्र स्वर में बोले।

'आपने मेरी आशाओं पर तुषारापात कर दिया, पिताजी…!' कला दृढ़ स्वर में बोली—'आपके सीने में जल्लाद जैसा पत्थर का दिल है। आपने मेरे अरमानों को अपने पैरों-तले कुचल दिया है…।'

'नादान लड़की…!' सेठजी गरज पड़े—'अपने दिल को सम्भाल—मैं तेरा पिता हूं—तुझे सांप से खेलते नहीं देख सकता…।'

'मधुकर सांप है, पिताजी…?'

'हां…सांप है, आस्तीन का सांप…!' सेठजी बोले—'वह सांप जिसके काटने पर मौत निश्चित है, उसकी कोई दवा नहीं… '

'आपके मुख से दिनेश की इन्जेक्ट की हुई घृणा बोल रही है…।' कहकर रोने लगी कला।

उसकी अधीरता देखकर सेठजी कुछ नम्र हुए। उनका हृदय भी पुत्री की अवस्था देख, भीतर ही भीतर रो रहा था।

'कला…!' सेठजी ने उठकर कला का हाथ पकड़ लिया और उसे स्नेहपूर्वक अपने हृदय से लगाते हुए बोले—'अपने को सम्हालो, कला…!' बोले सेठजी—'मैंने जो कुछ किया है, वह खूब सोच-समझ कर। मैं तुम्हारा अहित नहीं चाहता ! एक बाप अपनी बेटी को रोते नहीं देख सकता…!'

'आप मुझे सांत्वना देना चाहते हैं, पिताजी…!' बिलख कर बोली कला—'शीशे को पत्थर पर पटक कर, उसे फिर जोड़ने से क्या लाभ ? उस पर बन गई लकीर तो आप मिटा नहीं सकते ?"

'मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि मधुकर अपराधी था…।'

'अपने कानों से मैं ऐसा नहीं सुन सकती, पिताजी…! नहीं सुन सकती मैं…! चुप रहिए आप !'

दौड़ती हुई कला कमरे से बाहर चली गई।

कला के हृदय में मधुकर के लिए जो अपनत्व और स्नेह जाग उठा था—वह केवल एकान्त में ही शान्त हो सकता था।

सेठजी कला की दशा देखकर चिन्तित थे—और कला मधुकर का जेल जाना सुनकर रो रही थी।

खुश था तो केवल दिनेश···! इस समय वह अपने कमरे में मेज के पास बैठा हुआ प्रसन्न मुद्रा में चाय पी रहा था। कभी-कभी वह दूसरी कुर्सी पर बैठी, शुष्क चेहरा लिए लालिमा की ओर देख लेता था।

लालिमा आज अत्यधिक उदास थी। जबसे वह दफ्तर से आयी थी, एक घूंट चाय भी न पी थी उसने। इस समय भी चाय की प्याली सामने रखे हुए वह न जाने क्या सोच रही थी। प्याली को हाथ तक नहीं लगाया था उसने।

'यह क्या···?' दिनेश बोला—'आपने चाय अब तक नहीं पी···ठण्डी हुई जा रही है बेचारी, आपके अधरों की प्रतीक्षा में···।'

'आप इसे पी जाइये—मेरी इच्छा नहीं···।' और लालिमा ने प्याली दिनेश के आगे सरका दी।

'आप आज बहुत उदास दिखाई पड़ रही हैं?'

'उदासी और प्रसन्नता अन्तर्मन से सम्बन्धित है, मिस्टर दिनेश! आप मेरी उदासी के लिए चिन्ता न करें···।'

'आपको उदास देखकर मुझे दुःख होता है, मिस लालिमा···!' दिनेश ने लालिमा की लाल-लाल आंखों में देखते हुए कहा।

'आपकी इस कृपा के लिए धन्यवाद···!' लालिमा बोली—'मुझे आज मिस्टर मधुकर की गिरफ्तारी से बहुत दुःख हुआ है···।'

'क्यों···?' आश्चर्यचकित हो उठा दिनेश—'उसके प्रति आपके हृदय में इतनी सहानुभूति का कारण···?'

'इन्सान का दुःख देखकर हृदय में सहानुभूति हो जाना स्वाभाविक है, मिस्टर दिनेश···! उसका कोई कारण नहीं होता!' लालिमा बोली।

'परन्तु अपराधी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना, अप-

राध को प्रोत्साहन देना है, मिस लालिमा···!'

'जी नहीं, किसी की सहानुभूति पाकर अपराधी के हृदय में ग्लानि उत्पन्न होती है और वह सदैव के लिए अपना चरित्र सुधार लेता है···।'

'आपका मतलब यह है कि आपके हृदय में मधुकर के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, वरन् उसकी सहायता करने का दृढ़-संकल्प भी है···।' दिनेश ने रूखे स्वर में कहा।

'जी नहीं ! मेरा मतलब आप बिलकुल नहीं समझे···!' लालिमा बोली—'मैं मधुकर की क्या सहायता कर सकती हूं, जबकि आप उनके विरुद्ध है···।'

'मैं हर अपराधी के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द रखता हूं, मिस लालिमा···!'

'परन्तु मिस्टर मधुकर की मुखाकृति पर तो मुझे अपराधी के कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़े थे !'

'मिस लालिमा···!' दिनेश बोला—'शायद आपने विषाक्त कनक-घट वाली कहावत नहीं सुनी हैं···।'

'सुन चुकी हूं···।'

'सुन चुकी हैं ! फिर भी मधुकर के लिए आपके हृदय में करुणा का उदय हुआ है ? आश्चर्य है···!' दिनेश कहता रहा —'मिस लालिमा ! यदि मेरा बस चलता, तो ऐसे जलील को जमीन में कमर तक गाड़कर शिकारी कुत्तों को उसे नोच खाने के लिए छोड़ देता···।'

'चुप रहिये, दिनेश बाबू ! आप बड़े ही कठोर हैं···।'

दिनेश ने देखा—लालिमा का मुख आवेशमय हो उठा है।

'मेरा हृदय बहुत नम्र है, मिस लालिमा···!' दिनेश ने कहा—'परन्तु मधुकर की चेष्टाओं ने मुझे कठोर बना दिया है। मैं उससे घृणा करता हूं···।'

सचमुच दिनेश उससे घृणा करता है। उसकी घृणा के फलस्वरूप ही तो मधुकर आज अन्धकारपूर्ण कारागार में बन्द है।

अन्धकारपूर्ण कारागार···! और उसकी संगीन दीवारों से लगकर बैठा हुआ, वि·ारों में डूबा मधुकर !

रातभर सोचता रहा। विचारों में डूबता उतारता मधुकर

नींद उसे थोड़ी देर के लिए भी नहीं आई थी। प्रातःकाल हुआ। बाल-सूर्य की किरणें जेल की प्रस्तरनिर्मित दीवारों पर नाच उठीं।

दस बजे के करीब बैरक के वार्डर ने आकर मधुकर को खबर दी कि कोई उससे मिलने आया है। मधुकर ने देखा तो वार्डर के पीछे, आंखों में आंसू लिए कला खड़ी है।

वार्डर ने दरवाजा खोल दिया और करुण चीत्कार के साथ दौड़कर कला ममुकर के आगे गिर पड़ी।

'मधू···? मेरे मधू···?' अस्फुट स्वर में बोली वह।

जैसे कुछ सुना न हो, इस तरह मधुकर ने निष्ठुरतापूर्वक कला को अपने से अलग कर दिया।

'मधू···! तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो, मधू···!' करुण स्वर में बोली कला।

'तुमने मेरे साथ खूब न्याय किया···? तुम्हारे बाप ने मेरे साथ खूब भलाई की···!'

'तुम समझ नहीं रहे हो मधुकर कि···।'

'समझ रहा हूं···।' मधुकर बोला—'खूब समझ रहा हूं मैं। तुम्हारे बाप ने मेरे सीने पर चाबुक मारा, अब तुम नागिन बनकर मुझे डंसने आई हो। तुम्हारे बाप ने मुझे जलाया, अब तुम नमक लेकर उस पर छिड़कने आई हो···।'

'मधू···!' चिल्लाकर कला मधुकर के पैरों पर पुनः नत हो गई—परन्तु मधुकर ने उसे उठाया नहीं।

'चली जाओ, कला! मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो प्रेम शेष है, अब उसे घृणा में परिवर्तित न करो···।'

'मुझे क्षमा कर दो, मधू···! मैं निरपराध हूं···।'

'तुम निरपराध हो और मैं अपराधी हूं, यही कहना चाहती हो न तुम···।' मधुकर का चेहरा लाल हो गया आवेश से—'तुम और तुम्हारे बाप निरपराध हैं, क्योंकि तुम्हारे पास सब अवगुणों को ढकने के लिए पैसा है, और मैं अपराधी हूं, क्योंकि मेरे पास ईमानदारी प्रमाणित करने के लिए पैसे का अभाव है···चली जाओ कला! अब तुम्हारे आंसुओं में वह ऊष्णता नहीं जो मेरी घृणा को पिघला सके···मैं चाहता हूं कि अब आजीवन तुमसे, तुम्हारे बाप से, तुम्हारे धन से, तुम्हारी सहानुभूति से घृणा करता रहूं···।'

'मधू···!' चीत्कार उठी वह।

'समय हो गया···आप बाहर चलें।' वार्डर ने चेतावनी दी।

कला को बाहर जाना पड़ा। कारागार का फाटक पुनः बन्द हो गया।

धम्म से बैठ गया मधुकर, हताश हृदय लिए हुए। उसने कला से जो कुछ कहा था, उसके परिणामस्वरूप नयनों में आंसुओं का सागर उमड़ पड़ा।



सागर बैंक लिमिटेड का विशाल भवन खड़ा था, अपना सर उठाये आकाश का चुम्बन करते हुए···और बैंक के दरवाजे के सामने खड़ा था जीवन, अपने अनुचर रामदास के साथ—यह सोचते हुए कि कंचन और मधुकर से कैसे मिले ?

कंचन को देखकर वह उसे कलेजे से लगाना चाहता था—और मधुकर को—उस छलिया को पैरों से ठुकराना चाहता था।

अन्त में उसने उस विशाल भवन की प्रत्येक मंजिल पर जाकर कंचन और मधुकर को खोजने का इरादा किया।

रामदास को वहीं बाहर रहने का आदेश देकर, वह लिफ्ट पर जा चढ़ा और विद्युत-शक्ति द्वारा संचालित द्रुतगामी लिफ्ट ने, उसे पलक झपकते भर में पहली मंजिल पर पहुंचा दिया। वह छड़ी के सहारे उतर पड़ा।

वह बैंक का करेन्ट-एकाउन्ट्स सेक्शन था। कितने ही क्लर्क कार्य कर रहे थे। जीवन छड़ी के सहारे लंगड़ाता हुआ, कतार के बीच के रास्ते से धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

एक जगह चौंककर खड़ा हो गया वह।

जिस मेज के पास वह खड़ा हुआ था, उस पर सर झुकाये हुए कोई युवती कार्य कर रही थी। काम में वह इतनी तल्लीन थी कि जीवन का आना न देख सकी थी।

जीवन की विचित्र दशा थी। उसके पैर कांपने लगे थे। शरीर में रोमांच हो आया था।

'कंचन···!' जीवन ने रुद्ध कण्ठ से पुकारा और चौंककर उस युवती ने जीवन की ओर देखा। जीवन को देखकर उसका

शरीर सिहर उठा। वह लालिमा थी।

'कंचन···!' जीवन ने पुनः रुआंसे स्वर में पुकारा।

लालिमा ने एक बार जीवन की ओर देखा, देखकर पुनः सर झुका लिया और कार्य में तल्लीन हो गई।

'कंचन···!' आर्त-स्वर में पुनः पुकारा जीवन ने। इस बार सभी क्लर्कों का ध्यान उधर आकर्षित हो गया।

सबने आश्चर्य के साथ देखा, एक सभ्य वेश-भूषा में एक संभ्रान्त युवक को, जो लालिमा की मेज के पास खड़ा होकर कंचन, कंचन की रट लगाये हुए है। परन्तु लालिमा सर झुकाये लिखती जा रही थी।

'कंचन···! मेरी ओर देख···!'

अब लालिमा ने सर उठाया। बोली—'आप मुझे पहचानने में भूल कर रहे हैं, महाशय···!'

'भूल कर रहा हूं···।' भीगी आवाज में बोला जीवन—'भाई अपनी बहन को पहचानने में कभी भूल नहीं कर सकता···तू मुझे कभी धोखा नहीं दे सकती, कंचन!'

'मैं कंचन नहीं, लालिमा हूं···।'

'नाम तुम्हारा चाहे जो कुछ हो, मगर तुम सच-सच बताओ कि मेरी बहन हो या नहीं···।'

'नहीं···!' सर नीचा था लालिमा का।

'अपने हृदय से पूछो कि मैं तुम्हारा भाई हूं या नहीं?'

'नहीं···।'

'या भगवान···!' जीवन का सारा शरीर कांपने लगा—'यह मैं क्या सुन रहा हूं? वही स्वरूप, वही बातचीत का ढंग—और मेरी बहन नहीं···! क्या मैंने सचमुच अपनी बहन को खो दिया? मेरी बहन की ममतामयी आत्मा ही क्या लालिमा के इस कठोर पिंजरे में समा गई···?'

लालिमा को हृदय का आवेग सम्हालना मुश्किल हो रहा था। कैसे समझाये वह इस मतिभ्रान्त युवक को!

'कंचन···!' चिल्लाया जीवन—'कंचन···! होश में आ!'

'कंचन···!' इस बार स्वर इतना तीव्र था कि पैर लड़खड़ा उठे जीवन के—'तू सामने बैठी है और बोलती नहीं है।' जीवन लालिमा के बिलकुल पास आ खड़ा हुआ···और

लालिमा के आरक्त गालों पर चट्ट से जीवन की हथेली जा बैठी—'सब तुझे पहचानने में भूल कर जायें, मगर जीवन कभी ऐसी भूल नहीं कर सकता।'

लड़खड़ाते पैर, आवेशपूर्ण शरीर का बोझ न सम्हाल सके और दूसरे ही क्षण जीवन धड़ाम से जमीन पर आ रहा।

'भैया···!' चिल्लाई वह और दौड़कर जीवन के गिरे हुए शरीर से लिपट गई। जीवन में मानो विद्युत-शक्ति का संचार हुआ। उसने सर उठाया। उठकर खड़ा हो गया।

'कंचन !' मुख से शिथिल आवाज निकली।

'भैया···! मेरे भैया···!' और लोगों ने देखा कि महीनों से बिछुड़े हुए दो भाई-बहन, एक-दूसरे से लिपटे खड़े हैं, सुबकते हुए।

लालिमा कंचन थी और कंचन लालिमा ! एक जीवात्मा के दो रूप नहीं, वरन एक शरीर के दो नाम थे।

'नादान लड़की···!' आंखों में आंसुओं का भार सम्भाले बोला जीवन—'मुझे छोड़कर चली आई। यह न सोचा कि तेरा भैया मरता होगा या जीता—एक पत्र भी न भेजा। मेरी टांग तोड़ दी तूने···यह देख, अब तक जुड़ नहीं सकी···।'

'···' जीवन के कलेजे से लगी कंचन सिसकती रही, रोती रही। जीवन उसका हाथ पकड़कर एक कोने में आया।

'रोती क्यों है···?' बोला वह—'मुझे तो रुलाकर मार ही डाला, अब तू क्यों रोती है···?' जीवन ने कंचन की आंखें पोंछ दीं—सुनना चाहता हूं मैं कि तू यहां कैसे आई ?'

'···' कंचन चुप रही।

'मुझे बता—मैंने तुझे क्षमा कर दिया। सारी बातें उगल दे मेरे सामने···।' जीवन ने प्यार से कंचन के सर पर हाथ फेरते हुए कहा।

और धीरे-धीरे कंचन सब बताने लगी—जीवन सुनता रहा। मधुकर के प्रति उसकी घृणा बढ़ती गई।

इतने में आ पहुंचा दिनेश, जो किसी कार्यवश सेठजी से मिलने गया था।

'इन्हीं सज्जन ने मुझे बचाया था, भैया···!' कंचन ने दिनेश की ओर इशारा कर जीवन से कहा।

'हैलो जीवन···!' दिनेश जीवन की ओर बढ़ा।
'हैलो दिनेश···!' और दोनों ने हाथ मिलाया।
जीवन और दिनेश एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। कानपुर में एक ही कॉलिज के विद्यार्थी रह चुके थे वे।
जीवन जानता था कि दिनेश काला सांप है, क्योंकि वह कॉलेज में उसकी धृष्टता देख चुका था, अतः कंचन से यह सुनकर कि दिनेश ने ही उसे बचाया था और वह उसी के यहां रहती भी है—तो वह कुछ चिन्तित हुआ।
'कैसे आये जीवन ?' पूछा दिनेश ने।
'अपनी बहन को लेने···।'
'क्या मिस लालिमा तुम्हारी बहन हैं···?'
'लालिमा नहीं, कंचन कहो···।'
'ओह···!' कुछ सोचने लगा दिनेश।
'मधुकर कहां है···?' एकाएक उत्तेजित स्वर में पूछा जीवन ने—'कहां है वह···? मैं उसके मुंह पर तमाचे जड़कर उससे उसके विश्वासघात की सफाई मांगूंगा।'
'आप उससे जेल में भेंट कर सकते हैं···।' दिनेश हंसकर बोला।
'जेल में···?' आश्चर्यचकित हो उठा जीवन।
'हां···।' दिनेश ने कहा।
'किसने भेजा जेल उसे ?'
'सेठजी ने···।'
'क्यों···क्या किया था उसने ?'
जीवन ने अपनी छड़ी हाथ में ले ली थी और तनकर खड़ा हो गया था।
'उसने बैंक के सत्तर हजार रुपये चुराये थे···।'
'चुप रहो दिनेश···!' तड़पकर बोला जीवन—'वह सब-कुछ कर सकता है, मगर चोरी नहीं कर सकता। मैं उसे खूब जानता हूं, उसकी नस-नस पहचानता हूं मैं, दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं, वह चोरी नहीं कर सकता···।'
'मगर मैं कहता हूं कि उसने चोरी की है।' दिनेश बोला।
'चोरी का पता किसने लगाया ?'
'मैंने···?' और तब दिनेश ने सारी बातें विस्तारपूर्वक

जीवन से बता दीं। पासबुक की बात भी बता दी। सुनकर जीवन का माथा ठनका। दो-चार क्षण सोचने के बाद वह बोला---

'दिनेश···! मैं चाहता हूं कि कंचन अपनी पोस्ट से रिजाइन कर दे और उसे मैं अपने साथ ले जाऊं, इसलिए सेठजी के पास जा रहा हूं। तुम एक कागज पर यह लिख दो कि कंचन के रिजाइन करने में तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है। तुमसे ऐसा लिखवाना आवश्यक है, क्योंकि यहां पर तुम्हीं कंचन के अभिभावक हो···।'

'हां-हां ! मैं अभी लिख देता हूं···।'

दिनेश ने एक कागज के टुकड़े पर अपनी स्वीकृति लिख दी और जीवन को दे दिया। जीवन ने उसे ध्यानपूर्वक देखा और फिर जेब में रख लिया।

दिनेश अपनी मेज पर जाकर अपना काम करने लगा। जीवन कंचन के साथ ऊपरी मंजिल पर आया।

लिफ्ट से उतरते ही जीवन की दृष्टि दरवाजे पर पड़ी, जिस पर लिखा था—मैनेजिंग डाइरेक्टर।

जीवन ने समझा कि उसी कमरे में सेठजी होंगे, अतः वह धड़धड़ाता हुआ अन्दर घुस गया।

दरवाजे पर खड़े चपरासी ने उसे रोकने की चेष्टा की, परन्तु वह उसे धक्का देकर भीतर आ रहा। भीतर आकर वह चौंक पड़ा, एक चिर-परिचित मूर्ति को कुर्सी पर बैठा देखकर।

वह मूर्ति ! जिसकी पूजा वह अब तक करता आ रहा था और जिसने सालों पहले आसमान चूमती हुई उसकी प्रेमाग्नि पर, धूल झोंककर उसे सदा के लिए शान्त कर दिया था।

कला थी वह ! चौंक पड़ी जीवन को एकाएक इतने दिन बाद देखकर।

जीवन का तमतमाया चेहरा उतर गया।

'मिस्टर जीवन···!' आश्चर्य-मिश्रित स्वर में कला ने कहा।

'मिस कला !' धीरे से बोला जीवन और वापस लौटने लगा।

'मिस्टर जीवन···!' कला ने जाते हुए जीवन को रोका

'आप मुझसे इतनी घृणा हो गई है कि आकर, बिना बात किये लौटे जा रहे हैं ?'

जीवन लौट आया···। बोला— 'नहीं मिस कला ! मैंने सोचा शायद आप मुझसे बातें करना पसन्द न करें···मैं तो आपके पिता से मिलने आया था···।'

'क्यों ?'

'यह मेरी बहन कंचन है ! इसी का रेजिग्नेशन पेपर दाखिल करना था। यह घर से रूठकर चली आई थी···।'

'ओह···!' कला ने कंचन की ओर देखा—'आप मुझे अपना रेजिग्नेशन लिखकर दे सकती हैं, मिस कंचन···! इस कार्य के लिए पिताजी के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं···।'

और कंचन ने एक कागज पर अपना इस्तीफा लिखकर कला को दे दिया। कला ने उस पर कुछ लिखकर उसे फ़ाइल में रख लिया।

'मुझे आपसे कुछ शिकायत है—मिस कला !' जीवन ने कहा।

'क्या···?'

'यही कि मधुकर जेल चला गया और आप हृदय की सारी सहानुभूति को जड़-पत्थर बनाकर उसका जेल जाना देखती रहीं···।'

'मैं विवश कर दी गई थी, मिस्टर जीवन···!'

'आपने मुझे सूचना भी न दी···।' जीवन आवेशपूर्ण स्वर में बोला, 'आप जानती थीं कि दुनिया में मधुकर का एक ऐसा दोस्त भी है जो उस नादान के लिए सब-कुछ कर सकता है—सत्तर हजार रुपये की बिसात ही क्या ? अपनी जान तक दे सकता है···।'

'मैं स्वयं परेशान थी, मिस्टर जीवन···!' कला बोली—'अभी कल ही जेल गये हैं, तबसे अब तक मुझे कोई बात ठीक से सोचने का अवसर ही न मिला···।'

'मैं इस विषय में आपके पिता से बातें करना चाहता हूं···।'

'अच्छा हो कि आप उनके पास न जायें···वे आज न जाने क्यों बहुत क्रोधित हैं···।'

'कोई बात नहीं···।' जीवन बोला—'मैं उनसे बातें कर लूंगा, मुझे समय बहुत कम है।'

जीवन कमरे के बाहर निकल गया। कंचन भी उसके पीछे-पीछे बाहर गई।

रायसाहब सेठ बिहारीलाल उद्विग्नतापूर्वक मुंह में पाइप दबाये अपने ऑफिस में टहल रहे थे। चौंक पड़े वे, जीवन को बिना इत्तला कराये कमरे में आते देखकर। वे जीवन को जानते न थे।

'कौन हैं आप···?' सेठजी ने तीखे स्वर में पूछा।

जीवन ने चुपचाप अपना विजिटिंग कार्ड निकालकर उनके आगे बढ़ा दिया। सेठजी ने एक क्षण उसे ध्यानपूर्वक देखा, फिर पूछा—'क्या चाहते हैं आप ?'

'मैं मधुकर के विषय में आपसे बातें करने आया हूं···।' जीवन ने कहा।

सेठजी की भंगिमा एकाएक कठोर हो उठी।

'मैं उसके विषय में कोई बात करना नहीं चाहता···।'

'क्यों···?'

'मैं उससे घृणा करता हूं···।' सेठजी बोले—'और यदि आप उसके मित्र हैं, तो आपसे भी···आप तशरीफ ले जाइये···।'

'जी नहीं···!' दृढ़ स्वर में बोला जीवन—'आपने मधुकर को जेल भेजकर उसका नहीं, मेरा अपमान किया है मैं इसे सहन नहीं कर सकता···।'

'मुझे मधुकर या आपके अपमान की परवाह नहीं—आप बाहर चले जायें···।' तड़पकर बोले सेठजी।

'एक दिन मधुकर को खोकर, आप पछातायेंगे, सेठजी···! मेरे रहते मधुकर जेल में अधिक दिन तक पड़ा नहीं रह सकता···।'

'आपसे जो बने कर लीजियेगा !' सेठजी ने दृढ़ता से कहा।

'मैं उसे छुड़ा लूंगा···।' जीवन अधिकारयुक्त स्वर में बोला।

'मैं उसे चार साल के लिए बन्द कराकर रहूंगा···।'

'आपकी क्या हस्ती है सेठजी, जो उसे···!'

तमीज से बातें करो···। गरजकर बोले सेठजी—'जानते हो किसके सामने खड़े हो तुम···?'

'जानता हूं···।' व्यंग-मिश्रित स्वर में जीवन ने कहा—'मैं खड़ा हूं रायसाहब सेठ बिहारीलाल के सामने, जिसने गोरी सरकार के चरण चूमकर रायसाहबी पायी है, जो शेयर्स के रुपयों के बल पर सागर बैंक लिमिटेड का मालिक बना बैठा है !'

अपना अपमान होते देखकर कांप उठे सेठजी।

'और आप जानते हैं कि आप किसके सामने खड़े हैं···?' जीवन कहता गया—'आप ऐसे व्यक्ति के सामने खड़े हैं जो आपके बैंक जैसे दस बैंक खरीद कर गरीबों में बांट सकता है और···और तब भी उसके पास इतना धन शेष रह जायेगा कि वह दो-चार पुश्त बैठकर खा सके···।'

तड़प उठे सेठजी और जीवन कंचन को लेकर बाहर निकल गया। बाहर आया तो रामदास अब तक खड़ा था। कंचन को देखकर बूढ़े रामदास की आंखों में आंसू आ गये।

जीवन ने एक टैक्सी की। तीनों उस पर जा चढ़े। टैक्सी चल दी। रास्ते में कंचन ने कहा—'भैया···!'

'क्या है कंचन ? जी खोलकर कह दे—जो कुछ कहना हो···।'

'उनको छुड़ा लो, भैया···! चाहे जैसे भी हो···।'

'वही तो मैं करने जा रहा हूं···!' जीवन ने कहा—'वह नादान बनकर दोस्ती भूल जाये, तो क्या मैं भी भूल जाऊं। मैं छुड़ाऊंगा। उसे तमाचे लगाने के लिए छुड़ाऊंगा, शैतान ने क्या-क्या दुःख नहीं दिया है मुझे···।'

टैक्सी पर्शियन बैंक के सामने आकर रुक गई।

अकेला वह टैक्सी से उतरा और मैनेजर के पास जा पहुंचा।

आधे घण्टे बातचीत करने के पश्चात् वह वापस लौटा और टैक्सी में आकर बैठ गया। टैक्सी चल दी।

इस बार टैक्सी जहां आकर रुकी, वह था बम्बई के प्रसिद्ध एटार्नी 'केण्ट स्मिथ एण्ड आरसन वेलरा' का ऑफिस। वह अकेला ऑफिस में चला गया। रामदास और कंचन गाड़ी में

ही बैठे रहे। लगभग दो घण्टे तक वह वहां रहा।

इसके बाद दिनेश के डेरे पर आकर कंचन ने अपना सब सामान लिया और टैक्सी रिट्ज होटल की ओर मुड़ी।

समुद्र के समीप यह भव्य होटल बम्बई का एक प्रसिद्ध होटल है। जीवन वहीं आकर ठहरा था।



आज मधुकर का मुकद्दमा था। दर्शकों से अदालत ठसाठस भर गई थी। राय साहब सेठ बिहरीलाल, दिनेश, मिस्टर टामसन, मिस आइडा रिबेला आदि बैठे हुए थे। दूसरी ओर जीवन, कंचन तथा कुछ अन्य दर्शक बैठे थे। कला अनुपस्थित थी।

पुकार हुई और सिपाहियों से घिरा हुआ मधुकर कठघरे में आ खड़ा हुआ। कंचन का हृदय चीत्कार कर उठा। रिबेला के नेत्रों में आंसू उमड़ आये। बिहारीलाल के मुख पर घृणा परिलक्षित हो उठी। दिनेश का दिल बांसों उछलने लगा··· और जीवन दोनों की ओर क्रमशः देखकर, व्यंगात्मक मुस्कान मुस्करा दिया।

एक सप्ताह तक जेल-यातना भुगतने के पश्चात् आज मधु-कर कचहरी में पहली बार उपस्थित हुआ था। उसकी आंखें जमीन पर गड़ी थीं।

लोगों को यह देखकर परम आश्चर्य हुआ कि मधुकर की ओर से पैरवी करने के लिए बम्बई के सुप्रसिद्ध अटार्नी 'केण्ट स्मिथ एण्ड आरसन वेलस' तथा सबसे योग्य अनुभवी बैरिस्टर मिस्टर ज्यूडिथ एण्डरसन उठ खड़े हुए हैं। अदालत में सन्नाटा छा गया।

पहले सबूत-पक्ष की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सेठ बिहारीलाल और दिनेश आदि के बयान हुए।

न्यायाधीश के यह पूछने पर कि सफाई पक्ष का बैरिस्टर इन लोगों से कुछ जिरह करना चाहता है या नहीं। मिस्टर एण्डरसन ने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाकर क्रास-क्वेश्चन के लिए अपनी अस्वीकृति प्रकट कर दी।

मधुकर ने अपने बयान में अपने को सर्वथा निर्दोष बताया, उसने कहा कि वह कुछ भी नहीं जानता कि बैंक से रुपये किस प्रकार गायब हो गए और कैसे पर्शियन बैंक में अमर के नाम

का खाता खुल गया।

मधुकर के बयान के पश्चात् बैरिस्टर एण्डरसन ने कुछ कागजात न्यायाधीश की टेबल पर रख दिये। न्यायाधीश उन कागजों को उठाकर ध्यान से देखने लगे।

मधुकर अपनी ओर से बैरिस्टर मिस्टर एण्डरसन को खड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो उठा था। उसने जीवन और कंचन को भी पास-पास बैठे देख लिया था—परन्तु उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि जिस जीवन के हृदय में उसके प्रति अपरिमित घृणा है, उसी ने उसकी सहायता के लिए यह सब किया होगा।

न्यायाधीश ने उन कागजों को मेज पर रखकर अपना सर ऊपर उठाया और अर्थपूर्ण दृष्टि मिस्टर एण्डरसन पर डाली।

मिस्टर एण्डरसन बोले—'मी लॉर्ड! इस मुकद्दमे में मिस्टर मधुकर पर जो इल्जाम लगाया गया है, वह एकदम गलत है। ये कागजात उनकी निर्दोषित प्रमाणित करते हैं। यह कार्य मिस्टर मधुकर का नहीं, एक दूसरे ही धूर्त का है, जिसने बैंक में रुपये जमा कर दिये और अभिभावक के स्थान पर मिस्टर मधुकर का जाली हस्ताक्षर कर दिया···।'

मिस्टर एण्डरसन ने न्यायाधीश की मेज पर रखे हुए वे कागजात उठा लिये। बोले—'यह है वह एप्लिकेशन-फार्म, जो बैंक में खाता खोलने के पहले प्रार्थी को भरना पड़ता है।'

मिस्टर एण्डरसन ने उसमें से एक कागज निकालकर न्यायाधीश के हाथ में दे दिया और तब कहने लगे—'मी लॉर्ड! इस आप्लिकेशन फार्म के अक्षरों को ध्यानपूर्वक देखें और उनका मिलान इस खत के अक्षरों से करें···।'

मिस्टर एण्डरसन ने एक दूसरा कागज भी निकालकर न्यायाधीश की ओर बढ़ा दिया। दूसरे कागज को देखते ही दिनेश का चेहरा पीला पड़ गया। यह वही चिट्ठी है, जो उसने सेठजी के नाम कंचन के रेजिग्नेशन के लिए लिखकर जीवन को दीया थी।

'मी लॉर्ड! यह वही चिट्ठी है, जिसे असल अपराधी ने लिखकर जीवन को दिया था···।' मिस्टर एण्डरसन बोले—'आप देखेंगे मी लॉर्ड, कि अप्लिकेशन फार्म तथा इस पर के हस्ताक्षर हूबहू मिल रहे हैं···इसके अतिरिक्त पार्शियन बैंक का

वह क्लर्क भी आया है, जिसने अमर के नाम खाता खोला था।'

'उसे पेश किया जाये !' न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

एक दुबला-पतला युवक आया और अभिवादन कर खड़ा हो गया।

उसने बताया कि जो व्यक्ति बैंक में अमर के नाम से खाता खोलने आया था, उसकी आकृति वह भूला नहीं है, उसे देखकर पहचान सकता है। मधुकर की ओर देखकर उसने बताया कि यह वह व्यक्ति नहीं है, जो उसके बैंक में आया था।

'यहां उपस्थित आदमियों को देखो और पहचानो—क्या वह यहां है···?' न्यायाधीश ने आज्ञा दी।

उस क्लर्क की दृष्टि अदालत में चारों ओर घूमने लगी।

राय साहब सेठ बिहारीलाल की बगल में बैठे दिनेश पर आकर उसकी दृष्टि अटक गई। दिनेश कांप उठा।

'वह है, मी लॉर्ड···।' क्लर्क ने संकेत से बताया—'वही आदमी है।'

दिनेश ने उठकर भागना चाहा, मगर सेठ बिहारीलाल ने उसकी कलाई पकड़ ली।

दूसरे ही क्षण दिनेश के हाथों में पुलिस ने हथकड़ी डाल दी और मधुकर अपराधी के कठघरे के नीचे उतर आया।

जीवन उठ खड़ा हुआ। सेठ बिहारीलाल के पास आकर बोला—'देख ली आपने जीवनदास की शक्ति···? अब आप पर मधुकर की ओर से मानहानि का दावा होगा, तब मधुकर के बदले आप अपराधी के कठघरे में खड़े दिखाई देंगे···।'

जीवन अदालत से बाहर आया। कंचन भी उसके पीछे-पीछे आई।

कंचन को मधुकर के छूट जाने से आशातीत प्रसन्नता हुई, परन्तु हृदय के अन्तस्तल में प्रवेश कर गई विश्वासघातकता को वह चाहकर भी दूर न कर सकी। मधुकर ही तो उसके विनाश का कारण था।

जीवन अपनी सफलता पर प्रसन्न था। उसने मधुकर को छुड़ाना चाहा था और छुड़ा भी लिया—परन्तु उसके हृदय में मधुकर के प्रति जो तीव्र क्रोधाग्नि धधक रही थी, वह अब तक शान्त नहीं हुई थी, क्योंकि मधुकर ही तो सारे अनर्थों की जड़ था, उसी ने तो उसकी दुनिया उजाड़ी थी।

मधुकर अभी तक अदालत में हक्का-बक्का खड़ा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे हो गया यह सब ?

वह धीरे से मिस्टर एण्डरसन के सामने आ खड़ा हुआ। बोला—'धन्यवाद महाशय ! आपने मेरी इज्जत बचा ली···।'

'मुझे क्यों धन्यवाद देते हो, मधुकर···?' मिस्टर एण्डरसन हंसकर बोले—'हम तो रुपये के गुलाम हैं। अगर आपकी पाकेट में पर्याप्त रुपये हैं, तो हम आपके लिए सच को झूठ और झूठ को सच साबित करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं···।'

'आपको मेरी तरफ से किसने खड़ा किया था ?' पूछा मधुकर ने।

'मिस्टर जीवन ने···।' एण्डरसन बोले।

'ओह !' मधुकर जैसे आकाश से गिरा।

वास्तविकता जानकर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि जीवन ने उसकी इतनी सहायता की होगी। वह सोच भी नहीं सकता था कि जो जीवन उसके खून का प्यासा था, वह उस पर इतना सदय कैसे हो उठा ? जीवन ने यह सब किया ? जीवन ने अपने दोस्त को बचाया···? जीवन ने अपने मित्र की ईमानदारी को अक्षुण्ण बनाया—दौड़ पड़ा मधुकर अदालत के बाहर जीवन की खोज में। सड़क पर एक टैक्सी खड़ी थी।

स्टार्ट होना ही चाहती थी। उस पर कंचन और जीवन बैठे थे।

मधुकर चिल्लाया—'कंचन···! जीवन···!'

ड्राइवर का हाथ स्टार्टर पर जा चुका था, मधुकर दौड़कर टैक्सी के पास जा पहुंचा।

उसे देखकर जीवन ने अपना मुंह दूसरी ओर कर लिया।

'कंचन···!' मधुकर हांफता हुआ बोला—'कंचन···!'

'आप चले जाइये···।' कंचन के मुख से एकाएक यह वाक्य निकल गया, मगर उसका हृदय फट पड़ना चाहता था—'मैं आपको नहीं पहचानती···।' सर थामकर रह गया, मधुकर ! कंचन का यह व्यवहार उसके लिए असह्य था।

'जीवन···!' वह जीवन का हाथ पकड़कर बोला।

जीवन ने उसका हाथ झटक दिया। ड्राइवर से बोला—'टैक्सी बढ़ाओ !'

'जीवन···! मुझे माफ कर दो, जीवन !'

'चले जाओ, मधू ! मुझे और अधिक दुःख न दो।'

'तुम्हें दुःख होता है...।' मधुकर बोला भीगे स्वर में—'तो मुझे छुड़ाया क्यों...?'

'बताऊं, क्यों छुड़ाया...?' जीवन बोला।

'हां...बताओ...!'

चट्ट ! चट्ट ! चट्ट...! जीवन की हथेली ने जोरों के साथ मधुकर के गालों पर कई तमाचे जड़ दिये। मधुकर के नेत्रों के सामने अन्धकार छा गया। आंखों से आंसू झांकने लगे।

'इसीलिए छुड़ाया था तुम्हें...।' जीवन अवरुद्ध कण्ठ से बोला—'जीवन की केवल एक साध बाकी थी, वह भी आज पूरी हो गई...।'

टैक्सी आगे बढ़ चली। कंचन ने देखा, जीवन के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा निकलकर उसके गालों पर लुढ़क रही है। उसने मधुकर के गालों पर तमाचे नहीं मारे थे, स्वयं अपने गालों पर तमाचा मारा था। जिसे तमाचे मारने की लालसा उसके हृदय में हिलोरें मार रही थी, आज उसे तमाचे मारकर वह स्वयं रो उठा था। उसी दिन कंचन और जीवन मिर्जापुर को रवाना हो गये।



राय साहब सेठ बिहारीलाल की खोयी हुई शान्ति फिर वापस न आई। निष्कपट मधुकर के प्रति उन्होंने जो निर्दय व्यवहार किया था, उसका ध्यान कर उनके हृदय में भयंकर टीस उत्पन्न हो जाती थी।

दो महीने बीत चुके हैं—सेठजी की आंखों में नींद नहीं है, सदा संघर्ष मचा रहता है अन्तराल में। इस अवधि में सेठजी ने एक बार भी मधुकर को नहीं देखा। न जाने वह कहां था ?

दो-एक बार सेठजी के हृदय में तीव्र प्रेरणा हुई कि मधुकर के डेरे पर चलकर उससे क्षमा याचना करें, परन्तु उनका आत्म-सम्मान उनके मार्ग में बाधक बनकर आ खड़ा हो जाता।

यद्यपि नीच दिनेश को उन्होंने तीन साल के लिए जेल भिजवा दिया था, फिर भी उन्हें मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी थी।

कला की शोचनीय दशा देखकर सेठजी और भी व्यथित

थे।

इधर दो महीने से वह बराबर बैंक जा रही है—फिर भी वह अस्थिर रहती है। दिन-प्रति-दिन पीली पड़ती जा रही है। चेहरा सूखता जा रहा है।

कला को एक क्षण के लिये भी यह विश्वास नहीं हुआ था कि मधुकर ने बैंक से चोरी की होगी—और जब अदालत से मधुकर निरपराध छूट गया तथा दिनेश अपने कुकृत्य के लिए दण्डित हुआ, तो उसका हृदय अवर्णनीय प्रसन्नता से भर उठा। उसे आशा हो आई कि शायद मधुकर उसके पास मिलने के लिये आये।

परन्तु वह निर्मोही नहीं आया, तो कला की आशालता पर तुषारापात हो गया और आंखों में जैसे आंसुओं की नदी उमड़ पड़ी। वह मधुकर से मिलना चाहती थी। मधुकर के लिए उसके हृदय में प्रगाढ़ प्रेम, अगम व्यथा तथा उत्सर्ग की भावना थी। परन्तु कला को मधुकर के डेरे पर जाकर मिलने का साहस नहीं हो रहा था—क्योंकि जेल में उसने उसके प्रति घोर घृणा प्रकट की थी और असाधारण रूप से फटकारा था। उसका हृदय पत्थर के फर्श पर गिरकर जैसे चकनाचूर हो गया था। घर आकर उसने अपने हृदय के उन टूटे हुए टुकड़ों को, मधुकर की मधुर स्मृति को, अपने नयन कोटरों में उमड़ते आंसुओं से सम्बद्ध किया था।

वह क्या मुंह लेकर मधुकर के डेरे पर जाती!

जब मधुकर उसके टूटे हुए दिल को, अपने वाक्-वाणों से और भी टुकड़े-टुकड़े कर देगा—जब वह उसके भग्न हृदय को अपनी कटूक्तियों से ज्वाला उत्पन्न कर भस्मीभूत कर देगा—जब वह उसकी मुर्दा हो गई हसरतों को पैरों से ठोकरें मारकर छिन्न-भिन्न कर डालेगा—तो वह क्या करेगी? कैसे जीवित रह सकेगी? इतनी सहनशक्ति नहीं है उसमें!

फिर भी एक दिन, अपना समस्त साहस संवरण कर, अपने हृदय पर पत्थर रखकर, अपने दिल को समझा-बुझाकर, अपनी हसरतों को उकसा कर, कला चल पड़ी मधुकर से मिलने।

वहां पहुंचकर देखा उसने—फ्लैट सूना था।

मधुकर न जाने कब वह स्थान छोड़कर चला गया था—

कौन जाने कहां ? कला पर एकाएक जैसे वज्र गिर पड़ा। अपने उमड़ते हुए आंसुओं को पोंछकर, अधूरे अरमानों को धड़कते हुए सीने में दफना कर, वह वापस घर लौट आई। रोने लगी, तड़पने लगी। उसके रुदन और तड़पन ने सेठ बिहारीलाल के कठोर हृदय को मोम-सा पिघलाकर व्यथित कर दिया। वे कला के कमरे में आये।

'बेटा···!' उन्होंने पुकारा।

कला ने सर उठाया। अपने पिता को देखकर उसने अपनी आखें पोंछ लीं।

सेठजी बेचैनी के साथ कमरे मेंटहलने लगे, जैसे कुछ सोच रहे हों। एकाएक रुककर बले—'आंसुओं के प्रति बेरहम मत बनो, कला ! उन्हें व्यर्थ मत बहने दो, मैं मधुकर को वापस लाऊंगा···मैं अपने आत्मसम्मान को हथेली पर रखकर उसके पास जाऊंगा। उसके पैरों पर सिर रखकर क्षमा मांगूंगा। वह अस्वीकार नहीं कर सकता। मैं उसे बैंक में लाकर काम सम्हालने के लिए बाध्य करूंगा···।'

'वे नहीं आयेंगे, पिताजी···!'

'वह अवश्य आयेगा···।' बोले सेठजी—'उसके आगे जमीन पर लेटकर, मैं उसके हृदय में करुणा भर दूंगा···।'

सेठजी बाहर जाने लगे, तो कला ने उन्हें रोककर कहा—'अब वे वहां नहीं रहते, पिताजी···!'

'तब कहां रहता है ?' सेठजी की मुखाकृति गम्भीर हो उठी और वे भारी पैरों से टहलते हुए अपने कमरे में लौट गये।

दस दिन बाद ! कला रविवार को रायल ऑपेरा हाउस में मॉर्निंग शो देखकर टैक्सी की प्रतीक्षा कर रही थी। एक टैक्सी आती देखकर उसने हाथ के इशारे से उसे रोका और उस पर जा चढ़ी।

'कहां ले चलूं, हुजूर···!' ड्राइवर ने पूछा।

स्वर सुनकर एकदम चौंक पड़ी कला। उसने ध्यानपूर्वक ड्राइवर के मुख की ओर देखा। उसका सर चकरा गया। आंखों में आंसू उमड़ आये। उसके सामने टैक्सी ड्राइवर की पोशाक पहने बैठा था मधुकर। तो मधुकर अब टैक्सी चलाता है ? जिस व्यक्ति के पास महान मस्तिष्क है, वह इतना छोटा कार्य

करता है ? कला का हृदय हाहाकार कर उठा।

'मधु···!' उसने पुकारा।

मधुकर चुप रहा। सामने सड़क को देखता रहा वह।

'मधुकर···!' कला रुआंसे स्वर में बोली।

'आपको कहां ले चलूं हुजूर ?' गम्भीर स्वर में मधुकर ने पूछा।

'मेरे बंगले पर ले चलो मुझे···।'

मधुकर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। तीव्र गति से टैक्सी न्यू क्वीन्स रोड होती हुई मेरीन ड्राइव की ओर भाग चली।

'मुझसे रूठ गये हो, मधुकर···? आजकल कहां रहते हो···?'

मधुकर ने कोई जवाब नहीं दिया। कला व्यथित हो उठी। आंखों से लुढ़क पड़ने वाले आंसुओं को उसने पोंछ डाला।

टैक्सी झटके के साथ रुक गई। कला का बंगला आ गया था। वह उतर पड़ी। चाहती थी कि मधुकर का हाथ पकड़कर उससे भीतर चलने की प्रार्थना करे, कि तब तक टैक्सी ने पुनः गति पकड़ ली और देखते ही देखते चमकती सड़क पर दूर जाकर विलुप्त हो गई वह टैक्सी। कला दिल मसोसकर रह गई।

मधुकर टैक्सी भगाये लिये जा रहा था। कला के उस दो क्षण के मिलन ने उसके मस्तिष्क में तूफान की सृष्टि कर दी।

चर्चगेट स्टेशन पर आकर उसने अपनी टैक्सी रोकी और व्हील मडगार्ड पर बैठकर जाने किन विचारों में खो गया। यरास सिनेमा का मॉर्निंग शो अभी-अभी समाप्त हुआ था और भीतर से भीड़ निकली आ रही थी। कोई सज्जन आकर मधुकर की खाली टैक्सी पर बैठ गये। उसकी विचारधारा भंग हो गई।

मधुकर ने बिना पीछे देखे हुए पूछा—'कहां ले चलूं, हुजूर···?'

'अपने घर···!' उत्तर मिला।

चौंककर मधुकर ने पीछे देखा। सिहर उठा उसका बदन। रायसाहब सेठ बिहारीलाल बैठे थे उसकी टैक्सी पर।

सेठजी यरास में मार्निंग शो देखने आये थे। हाल से निकल

कर जब वे बाहर आये और अपनी कार पर बैठे, तो एकाएक उनकी दृष्टि मडगार्ड पर बैठे, मधुकर पर जा पड़ी। अतः सेठजी ने अपनी कार के ड्राइवर को पीछे-पीछे आने की आज्ञा दी और स्वयं आकर मधुकर की टैक्सी पर बैठ गये।

'मुझे अपने घर ले चलो···!' सेठजी बोले—'मुझे तुमसे कुछ बात करनी है···।'

'मुझे क्षमा करें, हुजूर···!' मधुकर विवशता भरे स्वर में बोला—'मुझे और अधिक परेशान न करें! गरीब आदमी हूं। मुझे अपनी रोटी कमाने दें···।'

'मुझे अपने घर ले चलो···!' सेठजी ने गम्भीर आवाज में आज्ञा दी। मधुकर विवश हो गया।

दादर के एक गरीब मोहल्ले में आकर मधुकर ने टैक्सी रोक दी। चारों ओर गन्दगी थी। दो मंजिले मकानों के ऊपर खपड़ैलें पड़ी थीं। गरीबों की बस्ती थी यह।

मधुकर टैक्सी से उतरकर चुपचाप एक घर में घुसा। सेठजी भी पीछे-पीछे आये। घर में घुसते ही सेठजी की दृष्टि एक धाय पर पड़ी जो लगभग साल भर के एक शिशु को पालने में झुला रही थी।

एक मामूली चारपाई की ओर इशारा कर मधुकर बोला—'उस पर बैठिये हुजूर···!'

'मुझे हुजूर न कहो···!' सेठजी चारपाई पर बैठते हुए अत्यन्त ही गम्भीर स्वर में बोले—'बाबूजी कहो मुझे, जैसे तुम पहले कहा करते थे···मैं तुम्हारे मुख से एक बार पुनः वही शब्द सुनना चाहता हूं···।'

'यह कैसे हो सकता है, हुजूर···?' मधुकर बोला—'आपको मैं···।'

चौंककर रुक गया मधुकर! उसने देखा कि गम्भीर बैठे हुए सेठजी की आंखों से एकाएक अश्रुधारा बह चली है।

'आप···!' हुजूर आप···!' मधुकर की समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह क्या करे?

'मुझे क्षमा कर दो, मधुकर···!' आर्द्र स्वर में बोले सेठजी—'मैं बहुत दुःखी हूं···कला मर रही है···बैंक उदास है···।'

'मैं क्या कर सकता हूं, हुजूर?' मधुकर के शब्दों में दृढ़ता थी।

'तुम मेरे साथ चलो, मधुकर…!'

'आपके साथ चलूं…!' व्यंगमिश्रित करुण स्वर में वह बोला—'और फिर गबन कर आपको परेशानी में डालूं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा…!

'मुझे शर्मिन्दा न करो, मधुकर !'

'आप चले जायें ! व्यर्थ मुझे दुःख न दें…।' मधुकर ने कहा—'आपके पास रुपये हैं, आपको मुझ जैसे हजारों नौकर मिल जायेंगे…।'

'मधुकर ! मेरे पास रुपया है, मगर आज मैं समझ पाया हूं कि रुपयों से मनुष्य का हृदय नहीं खरीदा जा सकता, मनुष्य की ईमानदारी नहीं खरीदी जा सकती।'

सेठजी उठकर कमरे में व्यग्रतापूर्वक टहलने लगे। जेब से अपना पाइप निकालकर उन्होंने थोड़ी-सी तम्बाकू डाली, फिर दियासलाई जलाकर एक गहरा कश खींचा, परन्तु धूएं की गर्मी उनके आंसुओं को न सुखा सकी, उनकी व्यथा का शमन न कर सकी।

'रुपयों से मैं नौकर खरीद सकता हूं…।' सेठजी पुनः बोले—'मगर तुम जैसा बेटा नहीं खरीद सकता, मधुकर…!'

'बेटा…!' व्यथापूर्ण हंसी हंसा मधुकर—'आप मेरा उपहास करने आये हैं, सेठजी…! आप मुझे चोर, बेईमान, व्यभिचारी बना ही चुके थे, अब जलील करने आये हैं…।'

'मधुकर…!' मेरी अवस्था पर ध्यान दो, मधुकर…! तुम्हारे बिना मैं अपनी बेटी खो दूंगा…वह रोते-रोते मर जायेगी।'

'अपनी बेटी के आंसुओं का तो आपको इतना मोह है, परन्तु क्या कभी आपने मेरे आंसुओं की भी कीमत समझी…?'

'समझ चुका हूं, मधुकर…!' सेठजी ने मधुकर का हाथ पकड़ लिया—'आज मैं अपने रूठे हुए बेटे को मनाने आया हूं। आज मैं अपनी सुख-शान्ति वापस लेने आया हूं…आज मैं अपनी बेटी की जिन्दगी मांगने आया हूं…।'

व्यथित सेठ बिहारीलाल ने मधुकर के पैरों पर अपनी मूल्यवान नाइट कैप उतारकर रख दी और उसके मुख पर दृष्टि गड़ाकर बोले—'जब तक तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे,

लौटकर जाऊंगा नहीं मैं…!'

कहकर सेठजी मधुकर का पैर पकड़कर बैठ गये। सहम कर मधुकर ने अपना पैर खींचना चाहा, मगर सेठजी ने नहीं छोड़ा। उनके नेत्रों से कई बूंद आंसू टपक कर उसके पैरों पर गिर पड़े।

मधुकर का हृदय भर आया। उसने सेठजी का कन्धा पकड़कर ऊपर उठाया और सेठजी ने उठकर उसे अपने हृदय से लगा लिया—जैसे एक व्यथित बाप अपने रूठे हुए बेटे को अपने कलेजे से लगाकर अपना युग-युग का वात्सल्य उड़ेल देता है।

'बाबूजी…!' मधुकर के मुख से पहली बार यह चिर-परिचित शब्द निकला—'मैं कल से बैंक आकर अपना काम सम्हालूंगा।'

'बेटा…! मेरे प्यारे मधुकर!' सेठजी हर्ष से विह्वल हो उठे।

इसके बाद बड़ी देर तक उन दोनों में बातें होती रहीं। सेठजी को मालूम हो गया कि वह नन्हा शिशु अमर, मधुकर का बेटा नहीं, वरन् उसकी दादी की धरोहर है।

दूसरे दिन—नित्य की भांति कला बैंक के लिए रवाना हुई। हृदय में चिन्ता का सागर हिलोरें मार रहा था। अब तक वह नहीं जानती थी कि मधुकर आज से बैंक आयेगा—सेठजी ने उससे कुछ भी नहीं बताया था। वे एकाएक उसको आश्चर्यचकित कर देना चाहते थे।

कला ज्योंही अपने आफिस-रूम में घुसी, कि चौंककर रुक गई, मधुकर को मैनेजिंग डाइरेक्टर की कुर्सी पर बैठा देखकर।

वह हर्ष-विह्वल हो मधुकर की ओर दौड़ी, परन्तु उसका हर्ष विषाद में बदल गया, जब मधुकर ने उसके आने पर जरा भी प्रसन्नता प्रकट नहीं की, आंख उठाकर उसकी ओर देखा तक नहीं। ज्यों का त्यों सर झुकाये लिखता रहा। कला के हृदय पर असहनीय आघात लगा। चुपचाप लौटकर वह अपनी कुर्सी पर जा बैठी। वह जानती थी कि मधुकर के हृदय में इस समय कैसा शोर मचा हुआ है।

कला की सहानुभूति और कंचन का प्रेम—दोनों मिलकर

मधुकर को बेकल बनाये हुए थे। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या करे ?

मधुकर नित्य बैंक आता। कन्या भी आती—परन्तु वे दोनों अधिकतर मौन रहते। कभी-कभी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ने पर एक-दूसरे से काम की बातें कर लेते—जैसे उनकी निकटता में जमीन-आसमान का अन्तर आ गया था और इस अन्तर ने उन दोनों के हृदयों में भयानक पीड़ा की सृष्टि कर दी थी।



जब से जीवन कंचन को लेकर बम्बई आया है, तब से उसे चैन नहीं है। कंचन के पीछे वह परेशान है। हर समय डाक्टरों से घर भरा रहता है। कंचन कहती है—'क्यों मेरे पीछे रुपये बरबाद कर रहे हो भैया ! कहीं मौत की भी दवा है…!

जीवन उत्तर देता—'एक बार तो मरकर जीवित हुई है, अब तुझे मरने नहीं दूंगा। अपनी सारी दौलत फूंककर तेरी मौत से लड़ूंगा…।'

कंचन ने सतत चिन्ता तथा असहनीय व्यथा में भस्मसात् होकर अपने अन्तराल में क्षय रोग पाल लिया था।

पहले तो केवल हलका-हलका बुखार रहता था, अब भीषण खांसी भी आने लगी है और हृदय की चिन्ताग्नि ‥ह से खून के कतरे बनकर निकलने लगी है।

डाक्टरों ने रोग असाध्य बताया और कहा कि हाड़-म‥ के पिंजड़े में यह बोलती मैना कुछ ही महीनों की मेहमान है।

जीवन अपनी बहन कंचन के लिए सब कुछ कर सकता है। वह उसे लेकर मसूरी, नैनीताल आदि स्थानों पर महीनों रहा है, परन्तु कंचन की दशा जरा भी नहीं सुधरी है। लाचार होकर अब वह घर लौट आया है और डाक्टरों के पीछे प्रतिदिन सैकड़ों रुपये नष्ट कर रहा है। कंचन उसे रोकती है, क्योंकि वह अपनी जिन्दगी से ऊब उठी है। अब वह मरना चाहती है, परन्तु जीवन है कि उसे मरने नहीं देता।

अर्द्ध रात्रि का समय है। कंचन कमरे में अकेली बैठी हुई

एक पत्र लिख रही है। शिथिलता से हाथ कांप रहे हैं, फिर भी वह पत्र लिखे जा रही है। यों—

आधी रात को भी नजरों के सामने नाचने वाले निर्मोही।

आज दिल कड़ा करके तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूं। न लिखती, मगर अब मेरे जाने का समय आ गया है और डाक्टरों के मत से अब मैं केवल कुछ ही दिनों की मेहमान हूं, इसलिए तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूं। क्षमा करना…! मैं जब-जब तुम्हें पाने की कामना करती हूं, मेरा अन्तर्मन मुझे धक्के देकर, सावधान करते हुए कहता है—'निर्मोही से सावधान रहो…।'

पिछली बार बम्बई में मैंने तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया, इस बात का मुझे दुःख है—परन्तु तुमने भी तो मेरे साथ विश्वासघात किया था और निर्मोही बनकर मुझे संसार में भटकने के लिए मजबूर कर दिया था। तो क्या तुम्हारी उस निष्ठुरता के लिए मेरे हृदय में प्रतिशोधाग्नि न प्रज्वलित होती ? घृणा न उत्पन्न होती ? तुमने मुझे जैसा दुःख दिया है, और तुम्हारे लिए मैंने जिस प्रकार दर-दर की ठोकरें खाई हैं, वह केवल मैं ही जानती हूं या परमात्मा जानता है—और कोई नहीं जानता।

अब चलते-चलाते तुम पर अपनी आप बीती प्रकट कर देना चाहती हूं…इस पत्र के साथ ही अपनी डायरी भेज रही हूं, जिसमें मेरे दुःखपूर्ण जीवन की सारी कहानी लिखी है। तुम उसे ध्यानपूर्वक पढ़ना और पढ़कर यह पत्र और डायरी तुरन्त जला देना। मैं नहीं चाहती कि मेरी मृत्यु के पश्चात्, मेरी कलंक-कहानी इष्टमित्रों एवं सगे-सम्बन्धियों में प्रसार पा जाय और मेरे भैया मुख दिखाने योग्य न रह जायें।

हां ! तुम उत्सुक होगे, यह जानने के लिए कि मुझे कौन-सी ऐसी बीमारी है जिससे मैं सुखपूर्वक इस संसार से चल बसूंगी…तो सुनो ! मुझे क्षय हो गया है ! आठ महीने पहले बम्बई से ही यह रोग पालकर आई हूं। भैया परेशान हैं—डाक्टर परेशान हैं—परन्तु मैं खुश हूं—बहुत खुश !

मैं जानती हूं कि रोग की दवा दी जा सकती है, परन्तु मृत्यु की दवा कौन दे सकता है ? मैं अपने चारों ओर मृत्यु का विकराल मुख देख रही हूं, फिर भी मेरे हृदय में तनिक भी भय नहीं है। मैं मरना चाहती हूं—मुझे इसी में सुख है—तुम

मेरी अन्तिम अवस्था का समाचार जानकर व्याकुल हो उठोगे और यहां आने के लिए फौरन रवाना हो आओगे—यह मैं जानती हूं। परन्तु मैं तुमको सावधान करती हूं कि तुम यहां आने की गलती मत करना, वरना मैं अपना गला अपने ही हाथों टीप लूंगी। मैं तुमसे अब सम्पर्क स्थापित करना नहीं चाहती—चाहती हूं तुम्हारी याद में तड़पकर अपनी जान दे देना।

एक नारी के हृदय में प्रेम और घृणा का साथ-साथ संघर्ष तुम्हारे लिए नवीन अनुभव की वस्तु प्रतीत होगी—परन्तु नारी हृदय की महानता तुम जसे निर्मोही पुरुष क्या जान सकेंगे ? अब मैं पत्र समाप्त करती हूं, क्योंकि डाक्टर ने मानसिक परिश्रम करने को मना किया है और अभी मुझे अपनी डायरी भी लिखकर पूरी करनी है, जिसे लिखना एक मुद्दत से छोड़ दिया था···बस !

तुम्हारी याद में तड़पती हुई—कंचनमाला !

कंचन ने पत्र मोड़कर लिफाफे में भरा और मेज पर एक ओर रख दिया। उसने दराज में से एक छोटी-सी डायरी निकाली। यह वही डायरी थी, जिसमें वह अपने सुख-दुःख की कहानी लिखा करती थी।

डायरी खोलकर वह सादे पन्ने पर पुनः लिखने लगी—चाहती हूं कि मरते समय तुम्हारा ही नाम मेरी जबान पर रहे।

पिछले पृष्ठों में, मैं यह लिख चुकी हूं कि छलिया मधुकर ने उस भीषण काली रात में मुझे अपनी बनाकर, मेरे चरित्राकाश पर सदैव के लिए कलंक-कालिमा पोत दी और मेरे गर्भ में एक नन्हें शिशु का बीजारोपण कर दिया और तब वह मुझे तड़पती-बिलखती छोड़कर जाने कहां चला गया कि कई पत्र लिखने पर भी कोई उत्तर नहीं आया।

मेरी परेशानी बढ़ने लगी, ज्यों-ज्यों मेरा पेट बढ़ने लगा। अन्त में मैंने भैया का घर छोड़ देने की ठानी और यह दृढ़-निश्चय कर लिया कि किसी तालाब में कूदकर प्राण दे दूंगी, मगर भैया के मुख पर कलंक न लगने दूंगी और एक दिन जब भैया कारखाने चले गये तो मैंने एक छोटे-से सूटकेस में कुछ आवश्यक सामान रखा और नौकरों की नजर बचाकर बाहर

निकल गई।

मेरे पैर अपने आप स्टेशन की ओर उठ गये। स्टेशन पहुंच कर देखा तो टिकट बंट रहा था। अब तक मैंने यह निश्चय नहीं किया था कि मैं कहां जाऊंगी? क्या करूंगी? परन्तु टिकट घर की खिड़की के पास पहुंचते ही मेरे मुख से हठात् निकल पड़ा—'कानपुर।'

और टिकट बाबू ने कानपुर का एक टिकट मेरे हाथों पर रख दिया। टिकट लेकर मैं प्लेटफार्म पर आई। गाड़ी आने में अभी देर थी, अतः प्लेटफार्म पर टहलती हुई अपनी बेचैनी दूर करने लगी।

मैंने सोचा—कानपुर चलूंगी, उस निर्मोही का पता तो जानती हूं। उसके पास चलकर, उसके पैर पकड़कर कहूंगी··· निर्मोही! मुझे बरबाद करना था, तो मेरा गर्भ आबाद क्यों किया?

गाड़ी आई और मैं उस पर सवार हो गई। मुझे लगा, जैसे मैं अपने प्यारे भैया से हमेशा के लिए दूर चली जा रही हूं।

गाड़ी चल पड़ी और लगभग पांच घण्टे बाद कानपुर पहुंच गई।

मैं बहुत थक गई थी, क्योंकि मेरी दशा ऐसी नहीं थी कि मैं कष्ट सहकर यात्रा कर सकूं। मानसिक चिन्ताओं ने मुझे कमजोर बना डाला था।

एक इक्का करके जब मैं मधुकर के मुहल्ले में पहुंची तो शाम हो चुकी थी। बड़ी देर तक भटकने के पश्चात्, मकान का पता मिला। परन्तु वहां कोई न था। दरवाजे पर ताला बन्द था। मैं हताश होकर सीढ़ी पर गिर पड़ी। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं? कहां जाऊं? मुझे अपनी दशा पर रोना आ गया। टप-टप आंसू चू पड़े। इतने में ही बगल का दरवाजा खुला। एक बुढ़िया मेरे पास आ खड़ी हुई। मुझे देखकर बुढ़िया को दया आ गई।

पूछा उसने—'कौन हो तुम बेटी? क्या चाहती हो···?'

'मैं एक दुखियारी हूं, मां···!' मैं बोली—'आश्रय चाहती हूं···।'

'आ जाओ···।' बुढ़िया ने कहा—'भीतर आ जाओ बेटी!

उसे अपना ही घर समझो। मेरा दरवाजा बेकसों के लिए हमेशा खुला रहता है···।' बुढ़िया ने प्रेमपूर्वक मेरा हाथ पकड़-कर उठाया और अन्दर लाकर दीपक की रोशनी में मुझे ध्यान-पूर्वक देखा।

'तुम गर्भवती हो···?' बुढ़िया ने पूछा।

उत्तर में मैंने थोड़ा सर हिला दिया···और मारे लज्जा के जमीन में गड़ गई। बुढ़िया ने मेरा घर-बार, नाम आदि जानने के लिए बहुत हठ किया, परन्तु मैंने उसे कुछ नहीं बताया। केवल इतना कहा—'मां, अभागिन हूं! भाग्य के फेर में पड़-कर इस दशा को प्राप्त हुई हूं···एक छलिये ने मुझे छलकर, यह निशानी दी है, और इसीलिए मैं घर से भाग आई हूं···।'

'कोई बात नहीं, बेटी···!' बुढ़िया बोली—'मैं तुमको आजीवन अपने पास रखूंगी। तेरा बच्चा होगा तो उसे पाल-पोसकर बड़ा करूंगी। और मेरा बुढ़ापा हंसी-खुशी कट जायेगा···।'

'तुम्हारे और कोई नहीं है क्या, मां?' मैंने पूछा।

'नहीं! मेरा खास अपना संसार में कोई नहीं है···!' बुढ़िया कहने लगी—'अकेली बच गई हूं संसार में। एक दुखियारी और उसके लड़के को अपने पास रखा था। उस लड़के को पढ़ाया-लिखाया, परन्तु अपनी मां के मर जाने पर वह लड़का मेरी ममता-माया भूल गया—मधुकर नाम था उसका।'

मधुकर का नाम सुन एकाएक मैं चौंक पड़ी। परन्तु मेरा चौंकना बुढ़िया देख न सकी। वह बोली—'हां! मधुकर ही नाम था उसका। जिस सीढ़ी पर तुम बाहर बैठी थीं, उसी बाहरी कोठरी में वह रहता था···।'

'अब कहां हैं वे मां···?'

'उसकी कुछ न पूछो, बेटी···! यों तो लड़का बहुत अच्छा था। मुझे बहुत मानता था, हर समय दादी-दादी की रट लगाये रहता था, परन्तु मां की मृत्यु ने उसके मस्तिष्क को विकृत कर दिया। कुछ दिन इधर-उधर भटकते रहने के बाद···आजकल वह बम्बई में है। मेरी सुध भूल गया है। जब से वह वहां गया है, एक भी पत्र नहीं भेजा है उसने···।'

'वे बम्बई में कहां रहते हैं, मां···?'

'कुछ पता नहीं। मैं क्या जानूं कहां रहता है? निर्मोही कहीं का!'

मैंने देखा मधुकर की याद आ जाने से बुढ़िया की आंखें भर आई हैं। मैं बुढ़िया के घर में रहने लगी। बुढ़िया ने मुझे बहुत प्यार और आराम से रखा। मेरी सुख-सुविधा का यथासम्भव उपाय करती रही। मुझे कोई भी काम करने नहीं देती थी। कहती थी—'बेटी! अब तेरे भारी दिन आ गये हैं। थोड़े दिन आराम कर। जब लल्ला बाहर आ जायेगा, तो फुदक-फुदक कर काम करना...।'

और कुछ मास बाद—मेरे पेट में भयंकर प्रसव-पीड़ा होने लगी। मेरा पाप बाहर आने के लिए छटपटाने लगा। उसी रात—चांदनी की चमक और ओस से भीगी हुई रात में एक नवजात शिशु ने इस संसार का मुख देखा। मैं चीख उठी अपने पाप के इस भीषण और सुन्दर परिणाम को देखकर। बुढ़िया हर्ष-विभोर हो नाच उठी। क्यों न नाचती वह, जबकि बच्चे के रूप में उसे बुढ़ापे का एक सहारा मिल गया था।

ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते गए, त्यों-त्यों मेरी दशा बिगड़ती गई और मेरे बच्चे का मुख धवल-चन्द्र की तरह खिलने लगा। जब मैं उसके प्रोज्ज्वल मुख की ओर देखती तो मुझे अपने पूर्व पाप की याद आ जाती। मुझे वह रात याद आ जाती, जिस रात जवानी की आंधी मुझे उड़ा ले गई थी।

मैं तड़पकर रह जाती। जिस स्मृति को मैं अपने मस्तिष्क से हटाना चाहती थी, वही बार-बार मेरे मानस-पट पर अंकित हो उठती थी। मैं सूखती जा रही थी, दिन-प्रतिदिन।

इधर मुझे मधुकर की याद सताने लगी थी तीव्र रूप से। मैं एक बार बम्बई चलकर उस निर्मोही की खोज करना चाहती थी। हृदय में मधुकर को देखने की उत्कट लालसा बलवती हो उठी।

कुछ दिनों से मेरे हृदय में एक भयंकर परिवर्तन होने लगा था—वह था बच्चे के प्रति मेरे हृदय में तीव्र घृणा का भाव!

स्वप्न में भी कोई ख्याल नहीं कर सकेगा कि एक माता अपने बच्चे से घृणा कर सकती है। परन्तु वह मेरा पाप-पुत्र था। मेरे रास्ते का कांटा था। उसे साथ रखने पर मैं समाज में

मुंह दिखाने लायक भी नहीं रह सकती थी। समाज मुझे कुलटा, वेश्या कहता।

और सोचते-सोचते मेरा सारा बदन सिहर उठा। मैं अपने भैया के घर से भाग आई थी। उस घर में वापस जाने के लिए मेरा दिल कचोट उठता था—परन्तु उस शिशु के रहते यह असम्भव था।

वह गोरा-गोरा-सा सुन्दर बच्चा मेरे रास्ते का रोड़ा था। न तो मैं मधुकर की खोज में बम्बई जा सकती थी, न स्वतन्त्र रूप से किसी जीविका के लिए उपक्रम कर सकती थी, न समाज में सर ऊंचा उठाकर रह ही सकती थी और न ही अपने भैया के घर वापस जा सकती थी।

हृदय में तीव्र प्रेरणा उत्पन्न हुई कि बच्चे को बुढ़िया के पास छोड़कर कहीं चल दूं। ममतामयी बुढ़िया बच्चे का लालन-पालन कर लेगी और उसका बुढ़ापा कट जायेगा। मेरी कलंक-कालिमा भी धुल जायेगी।

कितने ही दिन और कितनी ही रातें मैंने सोचते-सोचते काट दीं।

मेरे हृदय में सदैव एक ज्वाला-सी धधकती रहती थी। मैं न तो ठीक से सो पाती थी और न ठीक से खा-पी सकती थी। अन्त में एक दिन मेरे हृदय की सारी विकलता दृढ़ निश्चय में परिवर्तित हो गई।

एक दिन मैंने बुढ़िया से हंसकर कहा—'दादी ! अगर मैं चली जाऊं, तो क्या तुम बच्चे को सम्हाल लोगी ?'

'जा रे जा…।' बुढ़िया बोली—'जहां तेरा जी चाहे चली जा। मैं अपने लल्ला की देख-भाल कर लूंगी…।'

उसी रात चार महीने के बच्चे को सोता हुआ छोड़कर, उसका अन्तिम चुम्बन लेकर, मैं स्टेशन भागी। स्टेशन आकर मैंने श्रम की सांस ली, जैसे बहुत बड़े बोझ से छुटकारा मिला हो मुझे। उसी दिन बम्बई के लिए रवाना हो गई। यद्यपि मेरे हृदय में मधुकर के प्रति तीव्र घृणा तथा विद्वेष की भावना थी, फिर भी न जाने कौन-सी अदृश्य शक्ति मुझे उस ओर खींच ले चली।

कंचन ने अभी यहां तक लिखा था कि आ पहुंचा जीवन।

'कंचन…!' बोला जीवन—'तुझे कितना समझाया कि

अपना लिखना-पढ़ना कम कर दे, परन्तु तू मानती ही नहीं। आधी रात होने को आई, और अब भी मेज पर बैठी हुई तू लिख रही है ?'

कंचन ने डायरी मेज की दराज में छिपा दी।

बोली—'अब सो रहती हूं, भैया !'

'तू तो अपनी जान देने पर उतारू है···।'

जीवन ने कंचन का हाथ पकड़कर उठाया और उसे पलंग पर सुलाकर ऊपर से लिहाफ डाल दिया। और तब बिजली का स्विच ऑफ कर अन्धकार करने के पश्चात्, वह उस कमरे से बाहर हो रहा।

▭ ▭

मधुकर की चुप्पी से कला घबरा उठी थी। वह मधुकर से बातें करना चाहती थी। उसके मादक स्वरों को सुनते-सुनते मदहोश हो जाना चाहती थी। उनके सुडौल शरीर को अपने अंग-अंग में समा लेना चाहती थी।

परन्तु मधुकर तो सदैव गम्भीर रहा करता था। आठ महीनों में उसने कला से भूलकर भी प्रेमपूर्ण वार्तालाप नहीं किया था। उसके उल्लसित अधरों पर एक भी हलाहल भरा चुम्बन अंकित नहीं किया था।

बेचैन थी कला, मधुकर के लिए···व्यथित था मधुकर, कंचन के लिये।

और एक दिन कला दौड़कर मधुकर को अपनी कोमल बांहों में भरकर सिसकने लगी।

'क्यों रूठ गये हो मुझसे, मधू···?' मधुकर एक क्षण तक भूला-भूला-सा खड़ा रहा, कला के उन्नत उरोजों का मादक आलिंगन अपने पर सम्हालता हुआ।

फिर धीरे से कला को अपने से अलग कर वह बोला—

'मिस कला···!'

जीवन में यह पहला अवसर था जब कला ने उसके मुंह से अपने लिए 'मिस' शब्द का प्रयोग सुना था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मधुकर अब उससे इतनी दूर चला गया है कि जहां से लौटना असम्भव है।

'मधू···मेरे मधू···!'

'मिस कला…!' मधुकर बोला—'अपने हृदय को सम्हालो। वेगवती सरिता की धारा में अपने को वह जाने से रोक लो…।'

'यह क्या कह रहे हो तुम, मधुकर!' सिसक कर पूछा कला ने।

'ठीक कह रहा हूं मैं…।' मधुकर ने कहा—'यह युवावस्था वेगवती सरिता है। हृदय की अगम प्यास, मादक शरीर की उच्छृंखलता, आंखों का हलाहल युवावस्था में वासना की सृष्टि कर देते हैं और अपनी तुष्टि को ही वह प्रेम समझ लेता है…इस बात का मुझे अनुभव है, कला! इसलिए मैं तुम्हें इस विनाशकारी पथ पर घसीटना नहीं चाहता…।'

'मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूं, मधू! अपनी तुष्टि नहीं चाहती…।'

'तुम मुझसे विवाह करना चाहती हो…?' मगर किस लिए…? अपने यौवन की परितुष्टि के लिए ही तो…?'

'नहीं मधू! नहीं…!' बिलखकर कला बोली—'तुम मुझे नहीं समझ पाये हो! मैं तुम्हें प्यार करती हूं और चाहती हूं कि अपने हृदय-मन्दिर में तुम्हारी सलोनी मूर्ति स्थापित कर, उसकी उपासना करूं…मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि जीवन भर कभी तुमसे तुष्टि की चाहना नहीं करूंगी—कभी तुम्हारे यौवन पर मदहोशी की छाया न पड़ने दूंगी…।'

'तुम मेरी उपासना कर सकती हो, परन्तु मुझे पाने का ख्याल छोड़ दो, कला! निराकार ब्रह्म की उपासना से ही मुक्ति प्राप्त होती है, साकार ब्रह्म की उपासना से नहीं…।'

'तुम आज कैसी बातें कर रहे हो मधू…!'

'कला! आज तक एक भेद तुमसे छिपा रखा था, मैंने…।'

'क्या?' विस्फारित नेत्रों से उसने पूछा।

'मैं विवाहित हूं, कला…।'

'या भगवान…!' कला ने अपना सर पकड़ लिया—'तुम विवाहित हो…?'

'हां कला, मेरा विवाह हो चुका है…।'

'किससे?' कला ने पूछा।

'जीवन की बहन कंचन से…।' मधुकर बोला—'यद्यपि

दुनिया की नजरों में हम अब तक अविवाहित ही हैं, परन्तु हमने एक-दूसरे को बहुत पहले आत्मसमर्पण कर दिया था···।'

'तुमने कंचन से सामाजिक रीति से शादी नहीं की थी ?'

'नहीं, उसका अवसर नहीं मिला···।'

'छलिया···।' रो पड़ी कला—'जब तुम एक को छल चुके थे, तो फिर मुझे क्यों प्रेम की डोर में बांधा ? क्यों सब्ज बाग दिखाया ? मेरी मदहोश आखों में अपने नयनों के लाल-लाल डोरे क्यों उलझाये ?'

'मुझे क्षमा कर दो कला···! कंचन को मृत समझकर मैंने उसका दुःख भूल जाने के लिए, तुम्हें अपना कर अपना संसार बसाने का स्वप्न देखा था—परन्तु अब वह स्वप्न विलीन हो चुका है। कंचन जीवित है अभी—उसके रहते मेरा हृदय अन्य किसी की ओर नहीं झुक सकेगा।'

'निर्मोही···! मेरे दिल पर बिजली गिराकर, मेरे सीने को अपनी छाती की धड़कन सुनाकर, मेरे प्यासे अधरों का पराग लूटकर, मेरी मदहोश जवानी में अव्यक्त बेचैनी और तड़पन भरकर, मेरे छलकते हृदय में अगम प्यास की सृष्टिकर, अब तुम बातें बनाते हो···।'

'कला, मुझे विवश जानकर क्षमा करो···!' बोला मधुकर—'तुमने मेरे साथ जो कुछ किया है, वह इस संसार में कोई किसी के साथ नहीं कर सकता। तुम्हारी सहानुभूति के बल पर ही मैंने हंसते-हंसते दुःखों को झेला है—तुम्हारे उपकार मेरी रग-रग में घुल-मिल गये हैं, कला ! मैं भूल नहीं सकता उन उपकारों को···।'

'मेरे उपकारों का बदला, तुम मेरा सुख-चैन छीनकर दे रहे हो—मेरी जान लेकर तुम मेरी सहानुभूति का मूल्य चुकाना चाहते हो ?'

'मुझसे प्रत्युपकार की आशा न रखो, कला···! बहुत निर्धन हूं, तुम्हारा मूल्य नहीं चुका सकता। बहुत ही विवश हूं मैं, कला···!'

'उफ्···! दिनेश !' रोती हुई कला अपनी कुर्सी पर आकर धम्म से बैठ गई।

मधुकर अपनी कुर्सी पर बैठा रहा। कला के पास जाकर उसे सान्त्वना देने की क्षमता उसमें नहीं रह गई थी। उसी

समय चपरासी ने दिन की डाक मधुकर के सामने मेज पर लाकर रख दी।

एक छोटा-सा पार्सल भी था। उस पर की लिखावट देखते ही मधुकर चौंक पड़ा। कंचन के अक्षरों को भला वह कैसे न पहचानता? परन्तु उन अक्षरों में विकृतता आ गई थी, जैसे लिखते समय कंचन के हाथ शिथिलता से अथवा आवेग से कांपते रहे हों।

मधुकर का कलेजा न जाने क्यों धड़कने लगा। उसने पार्सल खोल डाला। एक पत्र और एक छोटी डायरी मिली।

मधुकर ने पहले पत्र शीघ्रतापूर्वक पढ़ डाला। पढ़ते ही आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। कंचन के क्षयग्रस्त होने का समाचार उसके लिए अत्यन्त दुःखद था। वह कुर्सी पर उठंग कर बैठ गया और उसकी आंखें अब कंचन की डायरी के पन्नों पर दौड़ने लगीं। डायरी यद्यपि विशेष बड़ी न थी, फिर भी मधुकर को लगभग एक घण्टा लगा उसे पढ़ने में।

डायरी खतम कर उसने मेज पर पटक दी। अपने ही हाथों, अपने गालों पर जोरों से कई तमाचे लगाए उसने, और तब असन्तुलित मस्तिष्क और नीरभरे नयनों से वह एक असहाय व्यक्ति की तरह स्वयं बड़बड़ा उठा—उफ्! उसने भोली-भाली कंचन से साथ कैसा गहरा विश्वासघात किया! उसे एक बच्चे की मां बनाकर उसकी खोज-खबर तक न ली।

परन्तु इसमें मधुकर का क्या अपराध? यदि उसे यह बात मालूम होती तो वह सब-कुछ त्याग कर कंचन का हाथ पकड़ लेता और उसे संसार में अकेली न भटकने देता! मधुकर का हृदय हा-हाकार कर उठा।

वह चली जाएगी—वह अपनी जान दे देगी—तो कैसे रह सकेगा वह?

मगर समय का क्रूर थपेड़ा सब भूलने के लिए बाध्य कर देता है—तो एक दिन कंचन की मृत्यु के पश्चात् वह भी उसे भूल जायेगा—अपने पिछले जीवन को स्वप्न का एक अंग समझ लेगा—और आजीवन अविवाहित रहकर अमर का लालन-पालन करेगा, कंचन की मृतात्मा को वह शान्ति प्रदान करेगा।

अमर···! अमर ही तो उसका और कंचन का पुत्र है।

जिसे वह अब तक अपनी दादी की धरोहर समझ रहा था, वह स्वयं उसका पुत्र निकला।

'मेरा बच्चा···! मेरा बेटा! कंचन की निशानी···!' बड़बड़ा उठा वह, परन्तु दूसरे ही क्षण उसका उल्लास विलीन हो गया।

कंचन चली जायेगी उसे तड़पता हुआ छोड़कर। कैसे देखे वह कंचन को—मरती हुई कंचन की सूरत वह अन्तिम बार कैसे देखे? वह जायेगा—चुपचाप जायेगा और गला टीपने के लिए बढ़े हुए कंचन के हाथों को कसकर पकड़ लेगा··· कहेगा—मेरी रानी! मरने से पहले, मुझे क्षमा करती जाओ, देवी! संसार से विदा होने से पहले, मेरी आंखों से निकले आंसुओं के अर्घ्य को स्वीकार करती जाओ—!

उठकर खड़ा हो गया मधुकर! उसी समय मेज पर रखे हुए टेलीफोन की घण्टी घनघना उठी। मधुकर ने रिसीवर उठाकर कान से लगा लिया।

घबड़ायी हुई धाय की आवाज उसके कानों में पड़ी—'गजब हो गया है बाबू···! मकान में आग लग गई है, ऐसी आग कि बुझाने से नहीं बुझ रही है···।'

'आग' घबड़ाकर बोला मधुकर, 'कैसे लग गई आग?'

'जाने कैसे सरकार···?' धाय कह रही थी—'सारा घर लकड़ी की तरह जल रहा है···।'

'अमर कहां है?' मधुकर ने पूछा।

रोती हुई धाय ने उत्तर दिया—'उसी मकान के भीतर है बाबू! आग ने चारों ओर से उसे घेर लिया है—किसी की हिम्मत मकान के अन्दर घुसने की नहीं हो रही है···।'

'अमर जलते हुए मकान में?' मधुकर हाय कर उठा—'मेरा बच्चा आग की लपटों से घिर गया···।'

घबड़ाया हुआ मधुकर बाहर दौड़ा।

बैंक के निचले हिस्से में आकर, गैरेज से मिस्टर टामसन की मोटर साइकिल निकाली—और बेतहाशा दौड़ पड़ी मोटर-साइकिल दादर की ओर!

मधुकर पर जैसे बेहोशी का भूत सवार हो गया था। उसे तनिक भी चिन्ता न थी कि कोई उसकी मोटर-साइकिल के

नीचे आ जायेगा। साठ मील की गति से वह भागा जा रहा था।

अमर के जलते हुए मकान के भीतर होने का समाचार सुनकर उसने अपनी जान हथेली पर रखकर मोटर-साइकिल भगा दी थी।

परेल पहुंचते-पहुंचते उसकी साइकिल एक पेड़ से टकरा गई। पेट्रोल में आग लग गई और मधुकर झटका खाकर सीमेंट की सड़क पर दूर जा गिरा। सर फट गया। खून की धारा बह चली।

एक क्षण की बेहोशी के बाद मधुकर पुनः उठ खड़ा हुआ। पास से जाती हुई एक टैक्सी पर शीघ्रता से चढ़ गया। टैक्सी उसे लेकर भाग चली। मधुकर ने जलते हुए पेट्रोल के बीच पड़ी मोटर-साइकिल वहीं छोड़ दी।

दूर ही से उसने अपने मकान के चारों ओर अग्नि का भयंकर ताण्डव देखा। हो-होकर जल रही थी आग। मधुकर को लगा, जैसे उसकी अपनी हड्डियां जल रही हों। टैक्सी रुकी तो वह उतर कर बेतहाशा लपटों की ओर दौड़ा।

लोगों की भीड़ एकत्रित थी। फायर ब्रिगेड भी आ गया था। परन्तु आग थी कि पानी पड़ने पर और भी भभक उठती थी, जैसे पानी नहीं, घी हो।

'अमर···! मेरा बेटा अमर!' दूर से चिल्लाया मधुकर।

धाय दौड़कर उसके पैरों से लिपट गई। रोती हुई बोली—'अमर अभी तक मकान में ही है, बाबू···! उसे बचा लो··· उस मासूम बच्चे की जान बचा लो, सरकार···!'

मधुकर पागल-सा हो उठा। वह धाय को धकेल कर विक्षिप्त-सा चिल्लाता हुआ जलते हुए मकान के दरवाजे की ओर बढ़ा। कुछ लोगों ने दढ़कर उसे मजबूती के साथ पकड़ लिया। बोले—'कहां जाते हो···अपनी जान देने···?'

'मुझे मत रोको···मत रोको मुझे! उस मकान में मेरा कलेजा जल रहा है···मैं अपनी जान दे दूंगा, मगर उसे जलने न दूंगा।'

अपने को छुड़ाकर मधुकर जलते हुए दरवाजे की राह मौत के मुंह में घुस गया। आग चिल्ला-चिल्लाकर जल रही थी। काठ के किवाड़ और धरन जल-जलकर धराशायी हो रहे

थे।

मधुकर सीढ़ी की राह ऊपर की ओर दौड़ा। जिस कमरे में अमर सोया था, उसने देखा, उस कमरे को आग ने पूरी तरह से अपने अंक में समेट लिया है। मधुकर को अपनी जान की परवाह न थी। उस समय वह केवल अमर को जीवित देखना चाहता था। वह घुस पड़ा कमरे में, देखा, उस नन्हें शिशु सहित चारपाई तीव्र वेग से जल रही है। मांस जलने की चिरायन्ध गन्ध कमरे की धूम्र-राशि में फैली हुई है।

जहां कुछ क्षण पहले एक कोमल शिशु का जीवित शरीर सोया था, वहां अब कुछ न था—काले कोयले की तरह एक बच्चे का ढांचा मात्र जलती हुई खाट के बीच में पड़ा था। कंचन और मधुकर के पाप का मधुर परिणाम इस समय कोयले में परिवर्तित हो चुका था। मधुकर हाय कर उठा।

पागलों की तरह झपटकर मधुकर ने जलती हुई खाट पर से अमर का झुलसा प्राणहीन शरीर उठा लिया और बाहर की ओर भागा। अब तक मधुकर के कपड़ों में भी आग लग गई थी। आंखें धुएं के गुब्बार से बेकार हो गई थीं।

फिर भी सीढ़ी की ओर लपका। परन्तु सीढ़ी का रास्ता पूरा रुक चुका था और आग की भयंकर लपटें उसे आगे बढ़ने देने में बाधक बन गई थीं···अब मधुकर को भी आग की लपटों ने चारों ओर से घेर लिया। रास्ता केवल एक था—वह था, पाइप पकड़कर नीचे उतरना। कार्य अत्यन्त भयंकर था—परन्तु मधुकर हताश न हुआ।

'वह है···! वह ! जलती हुई आग में खड़ा !'

नीचे से बहुत लोग चिल्ला उठे। शायद खुली हुई खिड़की पर खड़े मधुकर को लोगों ने देख लिया था।

मधुकर जीने की ओर बढ़ा—परन्तु एक जलती हुई धरन उसके ऊपर आ गिरी। वह हाय कर वहीं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। धरन की अग्नि ने उसे चारों ओर से घेर लिया। उसी समय फायरब्रिगेड द्वारा परिचालित पानी की एक मोटी धार खिड़की द्वारा आकर उस जलती हुई धरन पर गिरने लगी। धीरे-धीरे मधुकर के चारों ओर की आग बुझ गई और पानी की शीतलता पाकर उसकी चेतना-शक्ति वापस लौटी।

वह उठ खड़ा हुआ, अमर की लाश कसकर उसने कमर में बांध ली और जीने पर आकर, पाइप पकड़कर लटक गया।

उसके हाथ कांप रहे थे—आंखें बेकार-सी हो रही थीं—मस्तिष्क चक्कर खा रहा था। फिर भी वह पाइप पकड़कर धीरे-धीरे उतरने लगा।

'शाबाश ! शाबाश बहादुर !' नीचे से लोग चिल्ला रहे थे।

परन्तु मधुकर का मस्तिष्क रह-रहकर चेतनाहीन हो जाता। हाथ कांप रहे थे उसके। लग रहा था जैसे पाइप हाथ से अब छूटा, तब छूटा—और सचमुच छूट ही गया पाइप उसके कांपते हाथों से। तीव्र वेग से मधुकर बीस फुट नीचे आ गिरा। सिर दुबारा फट गया।

लोग बेहोश और लहू-लुहान मधुकर के पास दौड़ पड़े। परन्तु क्या कर सकते थे वे ? मधुकर तो अपनी जान पर खेल गया था।

इतने में ही घबराई हुई कला वहां आ पहुंची और उसके पीछे-पीछे रायसाहब सेठ बिहारीलाल भी। कला मधुकर के मृतप्राय शरीर पर गिरकर रोने लगी।

लोगों ने देखा—भीम जैसे रायसाहब सेठ बिहारीलाल की आंखें सावन-भादों बन गई हैं। उन्होंने कला का हाथ पकड़कर मधुकर के शरीर पर से उठाया। मधुकर का लाल-लाल रक्त, कला की श्वेत साड़ी को चूमकर हंस पड़ा, जैसे उसकी अगम वेदना का उपहास कर रहा हो।

सेठ बिहारीलाल की धन से भरी थैलियां डाक्टरों के सामने खुल पड़ीं। इंजेक्शन पर इंजेक्शन दिये जाने लगे। परन्तु मधुकर को मौत के पंजे से कोई बचा न सका।

मधुकर के शरीर को मौत के पंजे से कोई छीन न सका।

मधुकर का शरीर चार दिनों तक जीवन और मरण के बीच झूलता रहा।

इस बीच कभी-कभी उसके गले से घरघराहट भरी आवाज निकल जाती थी। उसके मुख से कंचन, जीवन, कला और दादी का नाम निकला करते थे। बेहोशी में वह इन सबको याद किया करता था।

कला के प्रेमाकाश पर अन्धकार फैलता जा रहा था। उसकी आंखों में नींद नहीं थी, आंसू नहीं थे। वह दिन-रात मधुकर का सर अपनी गोद में लेकर बैठी रहा करती थी। जीवन और दादी को भी एक्सप्रेस तार दे दिया गया था।

जलता हुआ दीपक बुझने के करीब आ गया और उसकी शिखा कुछ तेज होने लगी। डाक्टर ने एक और इंजेक्शन दिया—और तब कराहकर मधुकर ने अपनी आंखें खोल दीं। उसके मुख से थरथराहट भरी आवाज निकली। कला ने उसके मुख से अपने कान लगा दिये, तो क्षीण स्वर सुनाई पड़ा—'मैं कहां हूं···कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है मुझे···।'

कला बोली—'तुम अस्पताल में हो, मधू !'

'तुम···कौन···हो···तुम···?'

'मैं कला हूं···।'

'कला···! और···और क्या सेठजी भी आये हैं ?'

'हां···।' कला ने कहा।

'जरा उन्हें बुलाओ···मैं मरते समय उनसे कुछ कहना चाहता हूं···।'

'मधुकर···!' कहकर रो पड़े सेठजी।

'रोते हैं आप, बाबूजी···!' मधुकर शिथिल आवाज में अटक-अटक कर बोल रहा था—'एक दिन आपने कहा था कि ईमानदार आदमी, अपमान सहन करने के बदले मृत्यु का आलिंगन करते हैं···आज मैंने वह कर दिखाया है, बाबूजी···!'

'बेटा···!' सेठजी अत्यन्त विकल हो उठे।

उसी समय दौड़ते हुए जीवन, कंचन और दादी ने वहां प्रवेश किया। जीवन अश्रुसिक्त नयनों से उसे देखता रह गया।

कंचन के नेत्र जैसे शुष्क हो गये थ। तीव्र वेदनाग्नि ने उसके आंसू सुखा डाले थे।

दादी दौड़कर मधुकर से लिपट गई।

'कौन···?' सिहर उठा मधुकर का विवश शरीर।

'मैं हूं मधू···तुम्हारी दादी···!' तीव्र स्वर में रुदन करती हुई दादी ने कहा।

'दादी···!' मधुकर शिथिल स्वर में बोला—'मैं तुम्हारी धरोहर की रक्षा न कर सका, मुझे माफ कर देना···क्या कंचन

भी आई है?'

कंचन आगे बढ़ आई। प्रेमपूर्वक मधुकर का सर सहलाने लगी। सूखे हुए आंसू जाने कहां से उमड़ पड़े।

'मुझे क्षमा कर दो कंचन...!'

'मेरे मधू...! ऐसा न कहो...।'

'कंचन! तुमने मुझे निर्मोही कहा था, और आज मैं सच-मुच निर्मोही बनकर तुम्हें छोड़े जा रहा हूं...।'

कंचन पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

जीवन आगे आया। पुकारा उसने—'मधुकर...!'

'जीवन...! तुमने एक दिन मुझे तमाचा मारा था...और आज मैं आखिरी बार तुम्हारे मुंह पर तमाचा मारकर दुनिया से जा रहा हूं...।'

कुछ देर तक चुप रहा मधुकर। गले में अधिक घरघराहट होने लगी थी। कला ने अपनी गोद में पड़े हुए मधुकर के सर को जोरों से दबा लिया—सिसकती हुई बोली—'मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी मधुकर...!'

'जाना ही पड़ेगा...! तुमने मुझे आज तक बहुत-कुछ दिया—क्या मरते समय मुझे एक भीख दे सकोगी...?'

'भीख न कहो, मधू...! आज्ञा दो...तुम्हारी आज्ञा कभी टाल नहीं सकूंगी मैं...?' कला बोली।

'यह मेरा दोस्त जीवन अब तक तुम्हारे नाम की माला जपता आ रहा है, इसे मेरा प्रतिरूप समझकर स्वीकार करना...।'

'मधुकर...!' चिल्ला पड़ी कला—'ऐसे निर्मोही न बनो, परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए तुमने अत्यन्त कठिन प्रश्न रख दिया है मेरे सामने...।'

'समयानुकूल मेरा आग्रह है, कला...! हां कह दो, ताकि चिन्तारहित होकर यात्रा कर सकूं...दूर जाना है मुझे।'

'जाओ मधू...!' कला रोती हुई बोली—'तुमने आज तक मेरा एक भी कहना नहीं माना, मगर मैं तुम्हारी सभी आज्ञाओं का पालन करती रही हूं और यह भी करूंगी...।'

लोगों ने देखा—दीप-शिखा तनिक और तीव्र हुई और तब चारों ओर अन्धकार छा गया।

हाड़-मांस के पिंजरे में बसेरा लेने वाला पंछी उड़ चला

अनन्त आकाश की ओर···निर्मोही ने संसार से अपना नाता तोड़ लिया था।

आजकल कला, जीवन में ही मधुकर का प्रतिबिम्ब देखती है। उसे सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने में कोई कमी नहीं होने देती वह !

और कंचन···! कल से उसकी दशा शोचनीय है, डाक्टरों ने उसे केवल चौबीस घण्टों का मेहमान बताया है।

कंचन बिस्तर पर लेटी है और इस बात की प्रतीक्षा कर रही है कि कब उसका प्राण-पखेरू उड़कर मधुकर से जा मिले !

रात्रि का समय है। उदास जीवन और कला, कंचन की चारपाई के पास खड़े हुए एक कोमल फूल का डाली से टूटना देख रहे हैं।

परन्तु कंचन बहुत प्रसन्न है। उसके होंठों पर मौत की मुस्कराहट है और सामने वाले मकान में रेडियो बज रहा है—

विरहिन ! कैसे कटेगी रात ?
पी तो तिहारे दूर बसे हैं, नैनन नीर भरात
हृदय की आग छिपाये बावरि ! काहे को मुस्कात
विरहिन ! कैसे कटेगी रात ?

०००



कुशवाहा 'कान्त'

का मनभावन उपन्यास

निर्मोही

कुशवाहाकान्त हिन्दी उपन्यास जगत पर पिछले 40 वर्षों से छाये हुए है। उनकी सरल सशक्त लेखनी ने हिन्दी उपन्यास जगत में हलचल मचा दी थी। उनके उपन्यासों में जहां श्रृंगार रस का अनूठा समन्वय है, वहीं क्रान्तिकारी लेखनी व जासूसी कृतियों में भी उनका कोई सानी नहीं है। उन्होनें कुल 35 उपन्यास लिखे है। वह आज भी उतने ही लोकप्रिय है जितने 40 वर्ष पूर्व थे। उनका प्रत्येक उपन्यास पढ़कर पाठक उनके पूरे उपन्यास पढ़ना चाहता है।

उसी उपन्यासकार की एक उत्कृष्ट रचना आपके हाथों में है।

डायमंड पाकेट बुक्स कुशवाहाकान्त के उपन्यासों को आप तक पहुंचा कर गर्व अनुभव कर रहा है।



डायमंड पाकेट बुक्स